तिब्बत की आज़ादी भारत की सुरक्षा

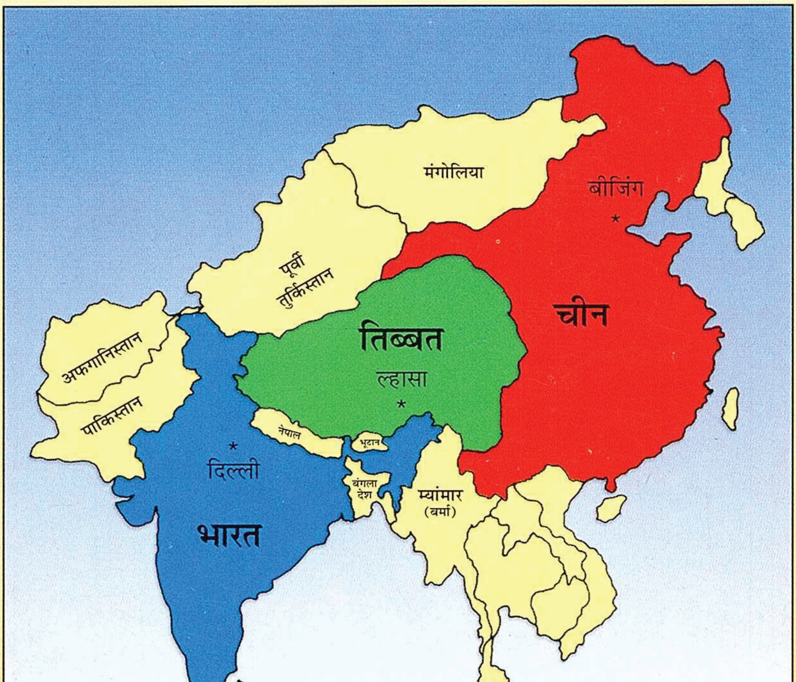

यह मानचित्र केवल तिब्बत की भौगोलिक स्थिति दिखने के लिए है यह सही स्केल के अनुसार बनाया गया आधिकारिक मानचित्र नहीं है

भारत तिब्बत सहयोग मंच

तिब्बत की आज़ादी भारत की सुरक्षा

सम्पादन
प्रो. चमन लाल गुप्ता
एवं
डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

भारत तिब्बत सहयोग मंच

प्रकाशक
सुनील मनोचा
महासचिव
भारत तिब्बत सहयोग मंच,
आजाद एजेन्सीज,
कोतवाली बाज़ार, धर्मशाला।

© भारत तिब्बत सहयोग मंच
प्रतियाँ 1000
संस्करण .... जनवरी, 2001

मूल्य – बीस रुपये

मुद्रक : अर्चना एडवरटाइजिंग प्राइवेट लिमिटेड, फोन : 4311992

अनुक्रमाणिका

पुरोवाक् 5
– कुप्. सी. सुदर्शन

भारत – तिब्बत सम्बधों का नया अध्याय 6
– आचार्य येशी फुन्छोक

तिब्बती संघर्ष : भारतीय अस्मिता का संघर्ष 9
– इन्द्रेश कुमार

तिब्बत सम्बंधी भारतीय विदेश नीति 15
– डा. चमन लाल गुप्ता

खतरे में है तिब्बत की संस्कृति 20
– ईश्वर दास धीमान

तिब्बत हमारा धर्मबन्धु है 22
– चौधरी स्वर्ण राम

तिब्बती स्वतन्त्रता के बिना अधूरी है भारत की स्वतन्त्रता 25
– डा. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

तिब्बत – चीन में संवाद जरूरी 35
– डा. कारे नारायण पाठक

Tibetan Card is the Strongest Card 36
– Karma Chhophel

Tibbat ki Azadi : Bharat ki Suraksha –
Some Reflections 39
– Dr. Surinder Kumar Gupta

परिशिष्ट 42

लेखक परिचय 44

आप बीती–जगबीती 46

समर्पण

शान्तिदूत, नोबल पुरस्कार विजेता परम पावन दलाई लामा जी के तिब्बत का शासनाभार सम्भालने की 50वीं वर्षगांठ पर समर्पित

पुरोवाक्

परम पावन दलाईलामा जी अपनी मातृभूमि तिब्बत को अत्यन्त विकट परिस्थितियों में छोड़कर अपनी गुरुभूमि भारत आये थे। उनका उन भीषण परिस्थितियों में भारत आने का प्रसंग विशेष महत्व रखता है। जब चीनी अत्याचारों से धर्म-संस्कृति, परम्परा और समाज के अस्तित्व पर संकट आया तो वे अपनी गुरुभूमि भारत की शरण में आये। वे अपना घर छोड़कर आये, यह दु:खद है और वे हमारे पास आये, इसका अभिनन्दन है। मुझे विश्वास है कि ये दु:खद दिन शीघ्र समाप्त होंगे। परम पावन दलाई लामा धर्म के मार्ग पर चल रहे हैं और धर्म की विजय निश्चित है। यही ईश्वरीय इच्छा है। परम पावन दलाई लामा जी भारत में रहकर तिब्बत मुक्ति के संघर्ष का मार्गदर्शन करें, इसके लिये उन्हें हर प्रकार का सहयोग करना प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है।

भारत-तिब्बत सहयोग मंच ने गत वर्ष (2000 में) ''तिब्बत की आजादी-भारत की सुरक्षा'' इस संवेदनशील एवं महत्वपूर्ण विषय पर विचार गोष्ठियों का आयोजन किया था। ऐसी संगोष्ठियों में प्रबुद्ध जनों द्वारा रखे गये विचारों को सर्वसाधारण नागरिक तक पहुंचाना आवश्यक है। इस के माध्यम से ही इस विषय के प्रति समाज में जागृति आयेगी। यह ग्रन्थ सभी वाचकों के लिये उत्कृष्ट पाथेय सिद्ध होगा- इस विश्वास के साथ इन प्रयासों की सफलता की प्रणुचरणों में विनम्र प्रार्थना करता हूं।

सरसंघ चालक
राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ
डा. हेडगेवार भवन
महाल, नागपुर

कुप्. सी. सुदर्शन

भारत- तिब्बत सम्बंधों का नया अध्याय

– आचार्य येशी फुन्छोक

भारत तथा तिब्बत के इतिहास में अक्तूबर मास की अनेक दु:खद एवं दंश देने वाली स्मृतियाँ जुड़ी हैं। 7 अक्तूबर, 1950 को साम्यवादी चीन ने विश्व के सर्वाधिक शान्तिपूर्ण, धार्मिक एवं प्राय: निहत्थे राष्ट्र तिब्बत को अपनी प्रसार-वादी, साम्राज्यवादी, दमनकारी सत्तालोलुपता का शिकार बनाया। चीन की लाल सेनाओं ने निहत्थे, निरीह तिब्बत को कुचल डाला और अपने इस अमानवीय कृत्य को तिब्बत की मुक्ति का नाम दिया। साम्यवादी सोच-समझ और नैतिकता का घृणित चेहरा पूरे विश्व ने देखा। 20 अक्तूबर, 1962 को चीन ने अचानक भारत पर धावा बोल दिया। पंचशील की कसमें खाने वाला और ''हिन्दी चीनी भाई-भाई'' के नारे लगाने वाला चीन एकाएक अपना उदार मुखौटा हटा कर अपने असली, खुंखार साम्यवादी चेहरे के साथ भारतीय सीमाओं पर आ खड़ा हुआ। अनपेक्षित हमले से आहत एवं विश्वासघात से मर्माहत पंडित नेहरू हतप्रभ रह गए। स्वाधीनता के पश्चात् चीन के हाथों शर्मनाक पराजय प्रत्येक भारतीय के लिए एक दु:स्वप्न की तरह है।

इस ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में 'भारत तिब्बत सहयोग मंच' ने अपने जन्म के साथ ही 7 अक्तूबर से 20 अक्तूबर तक प्रत्येक वर्ष तिब्बत मुक्ति पखवाड़ा मनाने का निर्णय किया। भारत तिब्बत सहयोग मंच ने दो स्तरों पर भारतीय जनमत को तिब्बत के पक्ष में करने के लिए रणनीति तैयार की है। प्रथम साधारण जन के स्तर पर और दूसरा बुद्धिजीवियों और भारत के नीति निर्धारकों के स्तर पर। मंच का मानना है कि चीन के खिलाफ यह संघर्ष अकेले तिब्बत की जनता का नहीं बल्कि भारत की जनता का भी उतना ही है। पिछले साल 1999 में इसी ''तिब्बत मुक्ति पखवाड़ा'' (7 अक्तूबर से 20 अक्तूबर) में दिल्ली में चीनी दूतावाम के आगे भारतीयों एवं तिब्बतियों ने संयुक्त रूप से तिब्बत की आज़ादी के लिए प्रदर्शन किया। उस समय प्रदर्शनकारियों को भारतीय संसद के दो सदस्यों डॉ. ओम प्रकाश कोहली एवं डॉ. महेश शर्मा एवं तिब्बती संसद के दो सदस्यों कर्मा छोफेल और डोलमा गेयरी ने संबोधित किया था। मंच इस मत का है कि तिब्बत की आज़ादी के लिए भारतीयों का केवल समर्थन ही न हो बल्कि उसके लिए सक्रिय सांझेदारी हो। इस वर्ष सन् 2000 में भी ''तिब्बत मुक्ति पखवाड़ा'' के अवसर पर धर्मशाला, शिमला, लेह तथा चण्डीगढ़ में

विचार गोष्ठियों का आयोजन किया गया। इस वर्ष इन गोष्ठियों का विषय था- 'तिब्बत की आज़ादी-भारत की सुरक्षा'।

17 अक्तूबर, 2000 को प्रथम गोष्ठी तिब्बती सचिवालय धर्मशाला में, द्वितीय गोष्ठी 19 अक्तूबर 2000 को हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में, तीसरी गोष्ठी लेह में 20 अक्तूबर को आयोजित की गई। पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ में किन्हीं अपरिहार्य कारणों से यह गोष्ठी 13 नवम्बर को गांधी भवन में आयोजित की गई। इन गोष्ठियों में प्रमुख वक्ता आचार्य येशी फुन्छोक, इन्द्रेश कुमार, प्रो. चमन लाल गुप्ता, डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री एवं तिब्बत सांसद करमा छोफेल।

हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय शिमला के कुलपति डा. सुरेन्द्र कुमार गुप्ता, पंजाब विश्वविद्यालय चंड़ीगढ़ के कुलपति डॉ. कारे नारायण पाठक, हिमाचल प्रदेश के शिक्षामंत्री श्री ईश्वर दास धीमान, पंजाब के संस्कृति मंत्री चौधरी स्वर्णा राम जैसे विचारकों ने भी इन गोष्ठियों में अपना मत रखा।

भारत की सुरक्षा, तिब्बत की आज़ादी में निहित है - यह बात स्वयंसिद्ध है। विभिन्न पहलुओं से इस विषय पर विचार किया गया है। मंच के सचिव सुनील मनोचा एवं तिब्बती कल्याण अधिकारी दावा छेरिंग ने धर्मशाला में, डॉ. सुरेन्द्र कुमार शर्मा ने शिमला में, श्री सूरत नेगी तथा श्री विश्वनाथन् राम स्वरूप ने चण्डीगढ़ में, अजय जाम्बाल ने लेह में इन गोष्ठियों को सफल बनाने के लिए सराहनीय प्रयास किए।

भारत-तिब्बत सहयोग मंच भारतीयों एवं तिब्बतियों के बीच सीधा सम्वाद स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। सरकारों के स्तर पर नहीं। सरकारें अपना काम स्वयं करें। भारत सरकार और तिब्बत सरकार (निर्वासित) का 'इंटरएक्शन' अपने स्तर एवं अपनी रणनीति के अनुसार ही हो। लेकिन मंच जनता के स्तर पर तिब्बतियों एवं भारतीयों के बीच इंटरएक्शन के लिए प्रयत्नशील है। यह शायद पहली बार हो रहा है। बुद्धिजीवियों के स्तर पर तो शायद पहले भी हो रहा है, लेकिन साधारण जनता के स्तर पर शायद सचमुच पहली बार ही हो रहा है। अभी शायद इस रणनीति की महत्ता समझ में न आये, लेकिन इसके दूरगामी सकारात्मक पुख्ता परिणाम निकलेंगे ही। क्योंकि लोकतांत्रिक प्रणाली में सरकारें बहुत देर तक जनमत के प्रतिकूल नहीं चल सकती। मंच की

कल्पना इन्द्रेश कुमार की है जो भारतीय राष्ट्रवादी आन्दोलन से जुड़े हुए हैं और हिमालय की संस्कृति एवं समस्याओं के गहरे अध्येता हैं। मंच का मानना है कि तिब्बत का केवल आज़ाद होना ही नहीं बल्कि उसको शक्तिशाली बनना होगा शक्तिशाली तिब्बत ही भारत के हित में है।

यह शक्ति सामरिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सभी स्तरों पर होनी चाहिए। सामरिक शक्ति का विकास धीरे-धीरे भी हो लेकिन तिब्बत को अपनी सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति को प्रथम तो बनाए रखना है, द्वितीय उसका विकास भी करना है। तिब्बत की सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक शक्ति ही चीन के भीतर उसका चीनी-करण से बचाव करेगी और तिब्बत से बाहर निर्वासन में उसका पश्चिमीकरण से बचाव करेगी। तिब्बत की सांस्कृतिक एवं अध्यात्मिक शक्ति ही उसकी अस्मिता एवं पहचान है। यह अस्मिता एवं पहचान बची रही तब तो तिब्बत हजार साल तक भी अपनी आजादी की लड़ाई लड़ सकेगा, अगर यही न बची तो तिब्बत आज़ाद होकर भी आज़ाद न होगा। इस अन्तर को समझने की जरूरत है। भारत-तिब्बत सहयोग मंच इन दोनों स्तरों पर सक्रिय है। क्योंकि मंच यह समझता है कि पश्चिमीकरण के सांस्कृतिक हमले से भारत को भी उलझना पड़ रहा है। इसलिए इस दूसरे स्तर पर भी भारत और तिब्बत का संघर्ष सांझा संघर्ष ही है। इसी संघर्ष से तिब्बत को शक्ति मिलेगी। यह शक्ति भारत के लिए भी गुणकारी है। तिब्बत के लिए तो है ही।

तिब्बती संघर्ष : भारतीय अस्मिता का संघर्ष

– इन्द्रेश कुमार

पिछले दिनों लाहौल स्पिति के काजा नगर में कालचक्र अभिषेक का कार्यक्रम था। देश विदेश से श्रद्धालु इस कार्यक्रम में भाग लेने के लिए काजा पहुंचे हुए थे। परम् पावन दलाई लामा काल चक्र अभिषेक कार्यक्रम के निमित्त काजा में थे। मुझे वहाँ उनसे मिलने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। बातचीत के दौरान उन्होंने कहा कि यदि भारत के पड़ोसी देश श्रीलंका, नेपाल और तिब्बत इत्यादि हों तो भारत को अपनी सीमाओं की रक्षा करने के लिए कुछ भी खर्च करने की आवश्यकता नहीं है। सीमा पर दस सिपाही रखने से ही काम चल सकता है। परन्तु यदि भारत के पड़ोसी पाकिस्तान और चीन जैसे देश होंगे तो भारत को अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए अरबों रुपये खर्च करने की जरूरत तो पड़ेगी ही, उसके बावजूद भी सीमाओं पर निरंतर तनाव बना रहेगा। दलाई लामा के इस विश्लेषण पर मैं बाद में भी बहुत देर तक सोचता रहा। अभी कुछ वर्ष पहले तक ही, पाकिस्तान तो भारत वर्ष का ही एक हिस्सा था। साम्राज्यवादी शक्तियों के षड़यन्त्र और कुछ हमारे ही राजनीतिक नेताओं के स्वार्थ के कारण भारत का विभाजन हुआ और पाकिस्तान की हजारों मील लम्बी एक नई सरहद विश्व के मानचित्र पर उभर आई। उस कृत्रिम सरहद की रक्षा के लिए भारत को अब तक चार-चार युद्ध लड़ने पड़ चुके हैं। 1947, 1965, 1971 और 1999 में अरबों रूपये इन युद्धों में फूंके गए। अनेक सैनिक सरहदों की रक्षा करते हुए प्राणों की आहुति दे गए। असैनिक भी मारे गए। तनाव सीमाओं पर निरंतर बना रहता है और बहुत सा पैसा जो विकास पर खर्च किया जा सकता था वह पाकिस्तान से अपनी सीमाओं की रक्षा के लिए खर्च करना पड़ रहा है।

यही स्थिति चीन की है। चीन के साथ भारत की सीमा कहीं भी मिलती नहीं है। कश्मीर की दिशा में पूर्व तुर्किस्तान के साथ थोड़ी बहुत भारत की सीमा लगती है, लेकिन तुर्किस्तान के लोग तो स्वयं चीन की गुलामी से मुक्ति के लिए संघर्ष कर रहे हैं। हजारों सालों से भारत की सीमा उत्तर में तिब्बत के साथ लगती थी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि भारत और तिब्बत में कभी सीमा विवाद नहीं हुआ। दोनों की सीमाओं पर शान्ति मंत्र ही गूंजते रहे। सीमाओं पर कभी सैनिक एक दूसरे के सामने सनद्ध नहीं हुए, बल्कि दार्शनिक विद्वानों का आदान-प्रदान होता रहा। 1950 में चीन ने तिब्बत पर बलपूर्वक आधिपत्य जमा लिया। इस एक घटना से रातों-रात भारत और तिब्बत के बीच 2400 मील की सीमा भारत और चीन की सीमा में बदल गई

और यहां आकर दलाई लामा का विश्लेषण प्रासंगिक हो जाता है। भारत के साथ चीन की सीमा लगते ही 1962 में चीन के विश्वासघाती आक्रमण का सामना करना पड़ता है। इस लड़ाई में भारत के हजारों सैनिक शहीद होते हैं। चीन भारत के हजारों वर्ग किलोमीटर क्षेत्र पर बलपूर्वक कब्जा कर लेता है। भारत और चीन की सीमाओं पर एक स्थाई विवाद और तनाव जन्म ले लेता है और इस सीमा की रक्षा के लिए अरबों रूपये लगाने पड़ रहे हैं। दुनियाँ की छत पर चीन के आने से सारा हिमालय ही असुरक्षित हो जाता है। इतना ही नहीं भारत का पड़ोसी बनने के उपरान्त चीन, सिक्किम, अरूणाचल और असम के बहुत बड़े भूभाग को चीनी क्षेत्र बता कर उसे अपने मानचित्र में चीनी क्षेत्र ही दर्शाता है। आश्चर्य इस बात का है कि पश्चिम के अधिकांश देश भी अपने यहाँ प्रकाशित मानचित्रों में उत्तर पूर्व के इन क्षेत्रों और कश्मीर को विवादास्पद क्षेत्र ही दर्शाते हैं। हमारा अपना रक्षा मंत्रालय ही बताता है कि 1998-99 में ही चीन ने 1400 बार भारतीय सीमाओं पर छेड़छाड़ की है। अरूणाचल प्रदेश के मुख्यमंत्री मुकुट मिथि तो अभी भी कह रहे हैं कि चीनी किसी न किसी रूप में भारतीय सीमा का अधिक्रमण निरंतर कर रहे हैं।

भारत और तिब्बत दोनों समान रूप से चीन की दादागिरी के शिकार हैं। 7 अक्तूबर, 1950 को चीन ने तिब्बत पर आक्रमण किया, जिसका अंतिम परिणाम तिब्बत की गुलामी के रूप में सामने आया। उसके 12 साल बाद 20 अक्तूबर, 1962 को चीन ने भारत पर आक्रमण किया और भारत के एक बड़े भूभाग पर कब्जा करके उसे भी गुलाम बनाया। भारत तिब्बत सहयोग मंच ने भारत और तिब्बत दोनों देशों में सहयोग के क्षेत्रों की तलाश की तो हमें लगा कि चीन की दादागिरी के खिलाफ भारत और तिब्बत के लोग एक सांझी रणनीति पर काम कर सकते हैं। सरकार के स्तरों पर यह रणनीति बन पाती है या नहीं या कितनी बन पाती है, यह एक अलग विषय है। लेकिन कम से कम दोनों देशों की जनता के स्तर पर इस रणनीति को आगे बढ़ाना हमारी समझ के अनुसार बहुत लाज़िमी है। इसलिए भारत तिब्बत सहयोग मंच ने 7 अक्तूबर से 20 अक्तूबर तक प्रत्येक वर्ष तिब्बत मुक्ति पखवाड़ा मनाने का निर्णय किया है। इस पखवाड़े का सर्वाधिक महत्व इसी तथ्य को लेकर है कि भारत की सुरक्षा मुख्य रूप से तिब्बत की आज़ादी से जुड़ी हुई है। भारत और चीन का झगड़ा दो सामान्य पड़ोसी देशों का झगड़ा नहीं है। पड़ोसी देश तो दुनियाँ में अनेक होते हैं, लेकिन जरूरी नहीं कि पड़ोसी देश आपस में लड़ते झगड़ते हों। चीन को मात्र पड़ोसी देश मान कर ही नहीं समझा जा सकता। चीन के कार्यकलापों का खुलासा करने के लिए उसके मनोविज्ञान को समझना बहुत जरूरी है। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के उस समय के सरसंघ चालक माधव राव सदा शिव गोलवलकर ने तो जब चीन ने तिब्बत

पर आक्रमण किया था तभी कहा था कि अगली बारी अब भारत की होगी। सरदार पटेल ने भी अपने ऐतिहासिक पत्र में पंडित जवाहर लाल नेहरू को चीन के इतिहास और मानसिकता से आगाह कर दिया था। आचार्य रघुवीर भी चीन के मनोविज्ञान को जानते थे। परन्तु भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री चीन के मनोविज्ञान को समझने में धोखा खा गए हैं। उस के दुष्परिणाम तिब्बत और भारत दोनों को ही झेलने पड़ रहे हैं। चीन अपनी मानसिकता में साम्राज्यवादी देश है।

चीन के मिथकों में चीन को सृष्टि के केन्द्र में माना गया है। अपनी सर्वश्रेष्ठता का भ्रम तो चीनियों में कूट कूट कर भरा हुआ है। चीनी शब्दावली में तिब्बती लोगों के लिए जो शब्द मिलता है, भाषा कोश में उसका अर्थ बर्बर है। साम्राज्य और जातिगत श्रेष्ठता जब एक साथ हो जाते हैं तो उस प्रकार के अत्याचार और पाशविकता जन्म लेती है जिसका सामना पिछले 50 वर्षों से तिब्बतियों को करना पड़ रहा है। चीन तिब्बत को गुलाम बना कर ही संतुष्ट नहीं है। वह तिब्बत जाति को नष्ट करना चाहता है। वह तिब्बत का विसंस्कृतिकरण कर रहा है। वह तिब्बत में 60 लाख तिब्बतियों के मुकाबले 2020 सन् तक 200 लाख चीनी लोगों को बसा कर तिब्बत को उदरस्थ कर लेना चाहता है। मनचूरिया में उसने यह कह कर दिखाया है। अब तिब्बत उसके अगले निशाने पर है।

कई बार मैं सोचता हूँ कि पैन इस्लाम और पैन हान एक ही मानसिकता को दर्शाते हैं। विश्व के इस्लामीकरण में पाकिस्तान आज महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए छटपटा रहा है। वह रूस, अमेरिका इत्यादि शक्तिशाली देशों में भी इस्लामी आतंकवाद को फैलाने में किसी न किसी सीमा तक सफल हो गया है। भारत तो उसका शिकार है ही। अफगानिस्तान में उसने किसी सीमा तक तालिबान के माध्यम से पैन इस्लाम का चमत्कार कर ही दिया है। हमारे अपने कुछ बुद्धिजीवी भी पाकिस्तान में उभर रहे इस विश्व इस्लामीकरण आन्दोलन के पीछे की शक्तियों को नहीं देख पाते हैं। वे तो इसे महज कश्मीर के स्थानीय झगड़े के रूप में देखते हैं या फिर बस यात्रा/ट्रेन यात्रा करके मन को बहलाते हैं। कुछ अग्रणी बुद्धिजीवी तो बाघा सरहद पर मोमबत्तियाँ लेकर पहुंच जाते हैं। यदि छोटा सा पाकिस्तान विश्व इस्लामीकरण के आन्दोलन में विश्व में जगह-जगह आतंकवाद के चकत्ते पैदा कर सकता है तो चीन तो बहुत शक्तिशाली देश हे। पैन हान आन्दोलन को मंगोल-बर्मी-तिब्बती नसल के क्षेत्रों में क्यों नहीं चला सकता? उसने इन्नर मंगोलिया निगल लिया, तुर्किस्तान को शिकंजे में कस लिया, मनचूरिया का अस्तित्व मिटा दिया और अब तिब्बत का सांस्कृतिक नाश करने पर जुटा हुआ है। उसकी इस हान करण की योजना

में हिमालय भी आता है और दक्षिणपूर्व एशिया भी। भारत और तिब्बत दोनों को यदि चीन का मुकाबला करना है तो भारत और तिब्बत को चीन की मनोवैज्ञानिक रणनीति को समझना होगा।

तिब्बत की समस्या पर चिंतन करने से पहले भारत के अपने पड़ोसी देशों के रिश्तों के भीतर के मूल तत्व को पहचानना होगा। भारत, नेपाल, भूटान, वर्मा, तिब्बत, लंका इत्यादि सभी देश धार्मिक सांस्कृतिक दृष्टि से एक अखंडता का बोध करवाते हैं। इसलिए अलग-अलग देश होने के बावजूद भी यहाँ के लोगों के बीच परस्पर वैमनस्य नहीं है, परन्तु पाकिस्तान ने जिस आयातित विजातीय संस्कृति को ओढ़ लिया है, उसके कारण पाकिस्तान और भारत में मन मुटाव रहता है। शायद यही कारण है कि भारत द्वारा पाकिस्तान के साथ वैमनस्य समाप्त करने के लिए किए गए, इतने प्रयासों के बावजूद स्थिति में रत्तीभर भी अंतर नहीं आया। कुछ-कुछ यही स्थिति चीन और तिब्बत में भी है। चीन ने जब मानवीय स्वभाव के विपरीत आयातित साम्यवाद को ग्रहण किया और उससे भी बढ़ कर उसका साम्राज्यवाद और हॉन राष्ट्रवाद के साथ घालमेल कर दिया तो तिब्बत के साथ उसके सम्बंधों में गड़बड़ शुरू हुई।

चीन अपने मूल चरित्र में विस्तारवादी और साम्राज्यवादी है, इसकी गवाही तो उसका इतिहास ही देता है अब इसे भी इतिहास की दुर्घटना ही कहा जाएगा कि 1949 में चीन ने साम्यवाद को भी ग्रहण कर लिया। यह तो एक करेला और दूसरा नीम चढ़ा जैसी स्थिति हो गई। साम्यवाद अपने मूल चरित्र में ही मानव विरोधी है, धर्म विरोधी तो वह है ही। उसका इतिहास ही रक्त रंजित रहा है। साम्यवाद ने चीन में बचे-खुचे मानवीय मूल्यों का भी नाश किया। तिब्बत तो धर्मभूमि है। तिब्बत ने अपनी धर्म आस्थाओं को भारत से ही ग्रहण किया है। यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि भारतीय मूल के धर्म मानवजनों को भेड़ बकरियों की तरह एक दूसरे के खेमे में परिवर्तित करने में विश्वास नहीं रखते। वे मानव के मानवीय विकास में विश्वास रखते हैं। इसलिए भारत और तिब्बत में धर्म को सनातन धर्म के नाम से पुकारा जाता है। सॉमी धर्म, इसके विपरीत छल-बल से धर्म परिवर्तन में विश्वास रखते हैं। तिब्बत में धर्म आस्थाओं का विकास चूंकि भारत से हुआ इसलिये वह चीनी मानसिकता के छल बल को समझ नहीं पाया। भारत तो स्वयं ही शायद चीनी साम्यवाद के पीछे के छल-बल को समझ नहीं पाया। परिणाम स्वरूप हिमालय चीन की लाल छाया से ग्रसित हो रहा है। इसलिए अब भारत और तिब्बत दोनों का मुख्य दायित्व हिमालय की सुरक्षा में है।

सुरक्षा का सम्बन्ध शस्त्र से है। शस्त्र यदि दूसरे पर आक्रमण करने के लिए न भी उठाया जाए तब भी अपनी सुरक्षा के लिए तो शस्त्र साधना करनी ही चाहिए। इतिहास में बहुत अरसा पहले, कभी तिब्बत ने भी शस्त्र साधना की थी। उन दिनों तिब्बत के लोग मार करते हुए चीन के भीतर तक घुस गए थे। बाद में तिब्बत ने शास्त्र साधना प्रारम्भ कर दी। भारत को विश्वभर में शास्त्र साधना का केन्द्र माना जाता है। जितना तत्व चिंतन भारतवर्ष में हुआ, उतना शायद अन्यत्र कहीं नहीं हुआ है। यही स्थिति कालांतर में तिब्बत की हुई। दुनियाँ में ऐसी बहुत सी संस्कृतियाँ हैं जो अपने उद्गम स्थान से बाहर शस्त्र बल पर फैली, या छल-बल दोनों से ही। इस्लाम और ईसाईमत का इतिहास ऐसा ही है। लेकिन भारत का दर्शन, उसका चिंतन, विश्वभर में तर्क और निष्ठा के बल पर ही फैला। हिन्द-चीन में, तिब्बत में, मध्य एशिया में, यहाँ तक कि सुदूर जापान में भी यह प्रभाव शास्त्रों के माध्यम से गया। शास्त्र की रक्षा के लिए शस्त्र की जरूरत है तथा शस्त्र को नियंत्रित करने के लिए शास्त्र आवश्यक है। शास्त्र के नियंत्रण के बिना शस्त्र अत्याचारी बन जाता है। हिंसक हो जाता है। और शस्त्र की सुरक्षा के बिना शास्त्र केवल निरर्थक शब्दजाल हो जाता है। गुलाम देश का तो शास्त्र भी किसी को प्रभावित नहीं कर पाता। भारत और तिब्बत दोनों ने ही इस नियति को भोगा है। तिब्बत तो अभी भी भोग रहा है। इसलिए भारत और तिब्बत से ज्यादा शस्त्र और शास्त्रों के इस सम्बन्ध को कौन समझ सकता है? अपनी स्वतन्त्रता की लड़ाई में भारत ने शास्त्र के साथ-साथ एक बार पुन: शस्त्र साधना सीखी। आज़ादी की लड़ाई में क्रांतिकारियों के सहयोग को भी कम करके नहीं आंका जा सकता। तिब्बत के लोग तिब्बत के अन्दर और बाहर आत्मबल से सत्याग्रह करके और चीनी कारागारों में अमानवीय अत्याचार सहकर भी तिब्बत की स्वतन्त्रता की लौ जगाए हुए हैं। ''चार नद और छ: शिखर'' आन्दोलन के योद्धाओं ने तो शस्त्र से भी चीन पर आघात किया।

अरूणाचल प्रदेश के ऊर्जा मंत्री सोना रिम्पोछे का कहना है कि यदि आज महात्मा बुद्ध पुन: अवतरित हों तो मैं उनसे एक ही आग्रह करूंगा कि वे हमें शास्त्र के साथ शस्त्र उठाने की अनुमति भी प्रदान करें। इस अनुमति के लिए चाहे मुझे उनके सामने सत्याग्रह ही क्यों न करना पड़े।

भारत के हित में है कि तिब्बत शक्तिशाली और स्वतन्त्र बने। तिब्बत को शक्तिशाली बनाना तिब्बती जनता का काम है। उनके परिश्रम पर उसका विकास निर्भर करेगा। तिब्बत की आजादी में एक पड़ोसी के नाते हमारी रूचि है और हमारा हित उससे जुड़ा हुआ है। तिब्बत के साथ हमारे धार्मिक, सांस्कृतिक रिश्ते भी हमें

तिब्बत का समर्थन करने की प्रेरणा देते हैं। भारतीय राजनीतिज्ञों की नीतियों और भूलों को जनमत जागृत करके बदला या सुधारा जा सकता है। चीन के साथ यह संघर्ष, तिब्बत और भारत का सांझा संघर्ष, हम दोनों को ही लड़ना होगा। पश्चिम के देश और उनकी सरकारें तिब्बत में मानवीय अधिकारों के दमन को लेकर समय-समय पर स्वर उठाती रहती हैं। परन्तु ये स्वर समय और परिस्थितियों के अनुकूल ही ऊँचे व धीमे होते रहते हैं। क्योंकि उन देशों का इस पूरी लड़ाई में कुछ भी दांव पर नहीं लगा हुआ है। लेकिन हमारा दोनों का तो इस लड़ाई में सब कुछ दांव पर लगा हुआ है। भारत की सुरक्षा दांव पर है और तिब्बत की स्वतन्त्रता दांव पर है। इसलिए यह संघर्ष हमारा यानि भारत और तिब्बत के लोगों का है और हमें ही यह संघर्ष लड़ना होगा।

मैं समझता हूँ कि भारत सरकार को भी अपनी स्थिति पर पुनर्विचार करना चाहिए। समझौते दोनों तरफ से चलते हैं। अगर चीन ने समझौता तोड़ दिया तो हमें अधिकार है कि हम भी उस पर फिर से विचार करें।

तिब्बत सम्बंधी भारतीय विदेश नीति

- डॉ. चमन लाल गुप्ता

व्यक्तियों की तरह ही राष्ट्रों के जीवन में भी ऐसे क्षण आते हैं जब उन्हें अपनी नीतियों पर पुनर्विचार की आवश्यकता पड़ती है। आज जबकि भारत एक सशक्त परमाणु शक्ति सम्पन्न राष्ट्र के रूप में उभर रहा है, विश्व की बड़ी आर्थिक शक्ति बनने जा रहा है, सूचना एवं प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व का सिरमौर बना है, उसे आज अपने आस-पास के पड़ोसी राष्ट्रों के साथ अपने सम्बन्धों पर विचार करने की आवश्यकता है, विशेषकर तिब्बत के प्रति भारत का जो रूख है या रहा है, उस पर गत पचास वर्षों से भारत की चीन-तिब्बत नीति पर्याप्त चर्चा और वाद-विवाद का विषय रही है।

तिब्बत को लेकर भारत की विदेश नीति पर विचार करने वाले दो तरह के लोग हैं। एक वे हैं जो हर कीमत पर चीन से मैत्री की वकालत करते हैं भले ही इसके लिए कोई भी कीमत देनी पड़े। ये लोग भारत के हितचिन्तक न हों या समझ और शक्ति से सम्पन्न न हों, ऐसी बात नहीं। इनकी अपनी 'परसेपसन' दृष्टि है इसी लिए वे ऐसा करते हैं। ये लोग राष्ट्र के हित चिन्तक हैं इसमें भी शक नहीं परन्तु भारत का हित किस में है, इस निर्णय पर पहुंचने में लगता है उन्होंने भूल की है। राष्ट्रीय हित अल्पकालीन भी होते हैं और दीर्घकालीन भी। मुझे लगता है चीन से मैत्री की हर कीमत पर वकालत करके ये लोग अल्पकालीन राष्ट्रीय हितों को पाना चाहते हैं। अल्पकालीन हित, वास्तविक हित हों, यह आवश्यक नहीं। भूखे व्यक्ति से यदि कहा जाए कि उसे रोटी चाहिए या दो वर्ष पश्चात् मन्त्रिपद तो वह कह सकता है, रोटी। मंत्रीपद दूर है और अप्राप्य सा लगता है इसलिए उसकी अवहेलना हो सकती है। स्वाधीनता के पश्चात् अपनी चीन सम्बन्धी नीति का निर्धारण करते समय भारतीय नेताओं ने ऐसी ही भूल की थी और उसकी सजा 1962 में उसे भुगतनी पड़ी थी। प्रश्न उठता है कि हमारे नेताओं ने ऐसा क्यों किया? विश्व शान्ति के मसीहा कहलाने के लिए अथवा एशिया का नेतृत्व करने की लालसा से या फिर चीन से मित्रता करने की आतुरता में ही संभवत: हमारे नेताओं ने वर्तमान चीन सम्बन्धी नीति को अपनाया होगा। यह भी संभव है कि भारतीय नेता अपनी कमज़ोरी को पहचानते हुए चीन से लोहा लेने से घबराकर, भयभीत होकर विवशता में ऐसी नीति अपनाने को विवश हुए हों। सन् 1962 की शर्मनाक पराजय के पश्चात् भारत की चीन विषयक विदेश नीति निश्चय ही भय पर आधारित रही है।

भारत की चीन विषयक विदेश नीति यदि भय पर आधारित न मानी जाए तो वह निश्चय ही अज्ञानता अथवा गलतफहमी पर आधारित है। प्रजातान्त्रिक भारत ने सोचा कि नवोदित साम्यवादी चीन भी उनकी तरह ही शान्तिप्रिय होगा और मानव मूल्यों की कद्र करेगा। इसी सदाशयता में भारत ने चीन का तिब्बत पर अधिपत्य भी स्वीकार कर लिया। हमारे नेताओं ने चीन के वास्तविक चरित्र को नहीं समझा, उसे समझने में गलती की। हम भूल गए कि विश्व में साम्यवाद का प्रसार शान्ति के मन्त्रोच्चार से नहीं हुआ बल्कि बन्दूक और तलवार से हुआ है। व्यक्तियों की तरह राष्ट्रों का भी चरित्र होता है। जिस प्रकार मनुष्य हिंसक अथवा शान्तिप्रिय या सबमिसिव होते हैं, क्रूर अथवा दयालु होते हैं, इसी प्रकार राष्ट्र भी आक्रामक अथवा शान्तिप्रिय होते हैं। साम्यवादी राष्ट्र हिंसा और दमन से पैदा होते हैं, और हिंसा तथा दमन पर ही जीवित रहते हैं। चैकोस्लोवाकिया में डुबचैक ने साम्यवाद को मानवीय चेहरा देने का प्रयास किया तो उसे हटा दिया गया और चैकोस्लोवाकिया को रौंद डाला गया। स्वयं चीन के तियनमेन चौक पर चीनी सेनाओं ने प्रजातन्त्र की मांग करने वाले अपने युवा विद्यार्थियों को टैंकों से कुचल दिया। इस दमन की चीन में कोई प्रतिक्रिया दिखाई नहीं पड़ी। साम्यवादी देशों का सही चरित्र यही है। चीन में या रूस में नेता कोई भी होता उनका व्यवहार ऐसा ही होना था। यदि हम ने इस चरित्र को ठीक से समझा होता तो हम न तो चीन के तिब्बत पर आक्रमण को अनदेखा करते और न ही उसे अपनी सीमाओं पर पैर जमाने देते। भारत यदि ब्रिटिश राज का उत्तराधिकारी राज्य था तो उसे तिब्बत में अपने हितों पर अड़ना चाहिए था। 1903 में ब्रिटिश राज ने फ्रांसिस हस्बैंड़ को सेनाएँ देकर ल्हासा भेजा था और 1904 की ल्हासा-भारत सन्धि में चीन की मध्यस्थता को नकराते हुए द्विपक्षीय सम्बन्धों पर बल दिया गया था। 1906 में इंग्लैंड की संसद ने इस सन्धि को नकार दिया था।

भारत में चीन विषयक नीति का एक दूसरा पक्ष भी है। कुछ भारतीय विचारक, राजनीतिज्ञ एवं कूटनीतिज्ञ यह मानते आए हैं कि हमारी चीन विषयक नीति भय की अपेक्षा विवेक पर आधारित होनी चाहिए। भारत का दूरगामी हित इसी में है कि तिब्बत आज़ाद हो। भारत की सीमाएँ सुरक्षित हों। हो सकता है आज तिब्बत की आज़ादी की बात अव्यवहारिक लगे अथवा असंभव लगे या फिर हम अपनी कमज़ोरी के कारण इसकी वकालत करने से घबराते हों परन्तु यदि हमारा हित इसी में है तो हमें निश्चय ही इसकी पैरवी करना नहीं छोड़ना चाहिए। जो लोग यह आशंका व्यक्त करते हैं कि ऐसा करने से चीन से हमारे सम्बन्ध बिगड़ जाएंगे, चीन हमारे सीमा प्रान्त में आतंकवादी गतिविधियों को बढ़ावा देने लगेगा और चीन से हमारे व्यापारिक सम्बन्ध बिगड़ जाएंगे तो उन्हें याद रखना चाहिए कि राष्ट्रों की विदेश नीति भय से

परिचालित नहीं होती, राष्ट्र-हित से परिचालित होती है। यदि हमारा हित तिब्बत की आज़ादी में है तो हमें इस मुद्दे को छोड़ना नहीं चाहिए। रही बात नाराज़ चीन क्या कुछ कर सकता है? तो याद रहना चाहिए कि चीन वही करेगा जो उसके हित में होगा। पाकिस्तान जो कर रहा है, वही करता रहेगा चाहे हम कितनी ही मित्रता की बस यात्राएँ कर लें। कोई राष्ट्र क्या कर सकता है या क्या करता है यह इस बात पर निर्भर करेगा कि उसे अपना हित किसमें दिखाई देता है। हमारे रोने, गिड़गिड़ाने या उसे रिझाने के लिए कलाबाज़ियाँ खाने से उसका व्यवहार बदलेगा नहीं। कायरता की नींव पर राष्ट्रीय विदेशी नीति का महल खड़ा नहीं किया जा सकता। कायरों को कोई शान्ति से जीने भी नहीं देता। भारत की सीमाओं पर शान्ति की जमानत शान्तिप्रिय, धर्मप्राण तिब्बत दे सकता है, क्रूर, हिंसक साम्यवादी चीन नहीं। साम्यवाद किसी आदर्श अथवा नैतिकता को महत्त्व नहीं देता जबकि, तिब्बत के साथ हमारे धार्मिक सांस्कृतिक सम्बन्ध हमें अच्छे पड़ोसी बना सकते हैं। चीन को कोई आदर्श, कोई जीवन मूल्य, कोई नैतिकता, भारत पर आक्रमण करने से नहीं रोक सकती। चीन के साथ हमारे सम्बन्ध तभी सुधर सकते हैं यदि हम शक्ति अर्जित करें और उसे विश्वास दिला दें कि हम अपनी रक्षा में समर्थ हैं। भारत के आन्तरिक मामलों में चीन अपनी आवश्यकता और सामर्थ्य के अनुसार ही सीधा हस्तक्षेप कर सकता है। यों उसने पाकिस्तान को शह देकर, शस्त्रास्त्र देकर भारत विरोध का अपना धर्म सदा निभाया है। भारत यदि पड़ोसियों के साथ मैत्री चाहता है, विश्वशान्ति का पक्षधर बनना चाहता है तो उसे शक्ति-संचय में जुटना होगा। कविवर रामधारी सिंह दिनकर ने कहा है-

"क्षमा शोभती उस भुजंग को, जिसके पास गरल हो।
उसको क्या जो दन्तहीन, विष रहित पुनीत सरल हो॥"

क्षमा करना भी ऐसे सांप को ही शोभा देता है, जिसके जहरीले दांत सही सलामत हों। जिस सांप के जहरीले दांत निकाल दिए गए हों और वह अपना पोपला मुंह खोलकर चिल्लाता फिरे कि मैं सबको क्षमा करता हूँ, किसी को काटूंगा नहीं तो उसे कौन मानेगा। बच्चे सांप को उठाकर घूमेंगे। सांप मारा जाएगा। कमज़ोर राष्ट्रों के साथ भी ऐसा ही होता है।

अंग्रेज़ी पाक्षिक फ्रंट लाईन के अक्तूबर 2000 के अंक में सुबह्मण्यम स्वामी और पत्रकार एन. राम के लेख भारत चीन सम्बन्धों को लेकर छपे हैं, जिनमें तिब्बत को भारत-चीन मैत्री में बाधक बताया गया है। सुब्रह्मण्यम स्वामी को भारत की राजनीति में कौन नहीं जानता? ऐसा मेंढक है जिसका पता नहीं कब किस टोकरी में

होगा। उसके लेख का सार यही है कि भारत को तिब्बत की सारी गतिविधियाँ रोक देनी चाहिएँ, तिब्बतियों को निकाल देना चाहिए। चीन से क्षमा मांग कर कहना चाहिए कि हम से भूल हुई जो तिब्बत का साथ दिया। आगे से ऐसा नहीं होगा, हमें क्षमा करें। इन विचारों में भय और कायरता की गंध आती है। तिब्बत से विश्वासघात की सलाह यदि स्वामी जी न देते तो आश्चर्य की बात होती क्योंकि विश्वासघात तो उनकी राजनीति का ब्रह्मस्त्र है। एन. राम सुलझे हुए पत्रकार एवं विचारक हैं। तिब्बत की सैर करके लौटे हैं। तिब्बत, विशेषकर ल्हासा में चीनियों द्वारा चलाए गए विकास कार्यों की चकाचौंध में वे भटक गए हैं। उनका यह तर्क कि साम्यवादी चीन ने तिब्बत की काया पलट दी है, वहां नए कारखानें, सड़कें, स्कूल, अस्पताल बनवाए हैं, खेती विकसित की है इसलिए पुराने तिब्बती शासन को भूल जाना चाहिए। विचित्र तर्क है। यदि कोई आपके घर पर कब्ज़ा कर ले, ऊपर से नया सोफा, फ्रिज, टी.वी. आदि सज़ा दे, कार्पेट बिछा दे और फिर कहे देखो अब यह घर कितना सुन्दर है। तुम्हे तो रहने का शऊर ही नहीं है। तुम हमारी तरह बन कर, चीनी बन कर रहो तो अपने घर में रह सकते हो नहीं तो तुम जंगलियों के लिए जेल या बनवास ही उपयुक्त है। चीनी प्रचार और विकास की तड़क-भड़क में फंसे एन. राम अनजाने या जानबूझकर चीनी अत्याचार एवं दमन के पक्षधर बन गए हैं। हम मान लेते हैं कि तिब्बत में विकास हुआ है परन्तु यह विकास ऊपर से थोपा और तिब्बतियों की आवश्यकता के अनुरूप नहीं है। ऐसा विकास अस्थाई और अहितकार होता है। जिस प्रकार चीन ने 60 लाख तिब्बतियों पर 70 लाख चीनी नागरिक तिब्बत में बसा दिए हैं उससे भी स्पष्ट है कि चीनी यह विकास अपने लोगों के लिए और अपने सैनिक हितों की रक्षा के लिए कर रहा है। चीन द्वारा तिब्बत के पर्यावरण, धर्म संस्कृति और जीवन शैली का विनाश करके जो बनावटी विकास थोपा जा रहा है, वह किस काम का?

हम तिब्बत का पक्ष किन्हीं धार्मिक, सांस्कृतिक अथवा नैतिक कारणों से ही न लें। हालांकि इन कारणों का भी अपना मूल्य और महत्त्व है। भारत, यदि शुद्ध राष्ट्रीय हितों को भी ध्यान में रखे तो उसे तिब्बत की आज़ादी अथवा स्वायत्तता का पक्ष लेना ही चाहिए। चीन से हमारे आर्थिक हित नहीं सध सकते। इस तथाकथित, आर्थिक उदारता के युग में शक्तिशाली को पूरी आज़ादी मिली है कि वह कमज़ोर राष्ट्रों को खा जाए। बिना उदारता का उदारीकरण अन्ततः अन्तर्राष्ट्रीय तनाव और हिंसा को जन्म देगा, शोषण को बढ़ाएगा। हमें भारत के उज्जवल भविष्य के हित में डट कर तिब्बत की आज़ादी की वकालत करनी चाहिए। क्योंकि इसी में भारत की सुरक्षा छुपी है।

भारत की सुरक्षा की गर्भनाल तिब्बत में है। ताज्जुब की बात यह है कि साम्राज्यवादी अंग्रेज़ इस बात को जान गये थे कि भारत के उत्तरी सीमान्त की रक्षा के लिए अत्यन्त जरूरी है कि चीन को उससे जितनी दूर रखा जाये उतना ही ठीक है। इसीलिए उन्होंने तिब्बत के साथ स्वतंत्र समझौते किए। तिब्बत को भारत चीन के मध्य में एक तटस्थ राष्ट्र के रूप में स्थापित करने के प्रयास किये। लेकिन भारत तिब्बत की इस सामरिक महत्ता को समझ न सका और उसने जानबूज कर उसे चीन की गोद में फेंक दिया। आश्चर्य तो इस बात का है कि अपनी इस भूल के पचास वर्षों के उपरान्त भी भारत तिब्बत के मामले में वहीं खड़ा है जहाँ 1950 में नेहरू खड़े दिखाई देते थे।

शायद इसीलिए भारत का उत्तरी सीमान्त हिमालय अभी भी उतना ही असुरक्षित है जितना 1962 में था। अन्तर केवल इतना है कि 1962 में भारत अपनी सुरक्षा करने में भी सक्षम नहीं था, लेकिन वर्तमान में वह अपनी रक्षा कर सकता है। परन्तु यदि तिब्बत स्वतन्त्र हो जाए तो हिमालय पर से यह लाल छाया स्वयं हट जायेगी और हिमालय रणस्थली न बन कर साधनास्थली बन जायेगा जो कि हिमालय की प्रकृति है, उसका इतिहास है।

> दु:ख की बात तो यह है कि वे देश जिन्होंने अभी हाल ही तक अपनी आज़ादी के लिए संघर्ष किया और आज़ाद हुए, अब तिब्बत के सवाल पर साम्राज्यवाद के गले सड़े फार्मूले की आड़ लेकर तिब्बत से वह हक छीन लेना चाहते हैं जिसे पाने के लिए वे खुद संघर्ष करते रहे हैं।

–लोकनायक जय प्रकाश नारायण

खतरे में है तिब्बत की संस्कृति

– ईश्वर दास धीमान

तिब्बत के लोग एक लम्बे अरसे से अपनी आज़ादी की लड़ाई लड़ रहे हैं। एक प्रकार से यह लड़ाई 1949 में ही शुरू हो गई थी जब चीन में 'गृह युद्ध' के फलस्वरूप साम्यवादी सेनाओं ने सफलता प्राप्त कर ली थी। साम्यवादी धर्म विरोधी थे और तिब्बत धर्म परायण। दोनों देश पड़ोसी थे। अत: दोनों का मानसिक युद्ध तो उसी दिन से शुरू हो गया था। दस साल तक आते 1959 में तो चीन ने तिब्बत के भाग्य पटल पर बन्दूक की नाल से गुलामी की रेखाएं खींच दी। तिब्बत के लोग अब इन्हीं रेखाओं को अपने खून से मिटाने का प्रयास कर रहे हैं। तिब्बतियों का बलिदान एक दिन अवश्य रंग लायेगा। तिब्बत आज़ाद होगा। तब भारत भी कह सकेगा कि शान्ति पूर्ण एवं लोकतान्त्रिक ढंग से तिब्बत की आज़ादी की लड़ाई भारत में ही लड़ी गई थी। लेकिन इस समय ज्यादा चिन्ता इस बात की है कि चीन तिब्बत का सांस्कृतिक नाश कर रहा है। इस अमानवीय कृत्य पर विश्व मौन है। तिब्बत के मन्दिर तोड़ दिये गये। पुस्तकालय जला दिये गये और मठों में से साधुओं को बाहर निकाल दिया गया। यदि तिब्बत की संस्कृति ही न बची तो दुनियाँ की छत कहा जाने वाला पठार निर्जीव पठार मात्र ही होगा, तिब्बत नहीं। तिब्बत की विलक्षणता उसकी संस्कृति में है। यही संस्कृति उसे चीन से अलग करती है। इसलिए चीन उस संस्कृति को ही नष्ट करने पर तुला हुआ है। तिब्बत की संस्कृति कहीं न कहीं, भारत की मुख्य धारा से जुड़ती है। इसलिए तिब्बत और तिब्बत की संस्कृति की रक्षा करना भारत का धर्म है।

हिमाचल प्रदेश के साथ तो तिब्बत के रिश्ते और भी गहरे हैं। हिमाचल के दो जिलों लाहुल-स्पिति और किन्नौर की सीमा तिब्बत के साथ लगती है। इन दोनों जिलों की आर्थिकता बहुत सीमा तक तिब्बत से होने वाले व्यापार पर निर्भर करती थी। व्यापार के लिये तिब्बत से होता हुआ मध्य एशिया को जोड़ने वाला तिब्बत मार्ग भी हिमाचल प्रदेश से गुजरता है। इस मार्ग के कारण होशियारपुर, ऊना तक का सारा प्रदेश जीवन्त रूप से तिब्बत से जुड़ा रहता था। लाहुल-स्पिति व किन्नौर के अनेक छात्र ल्हासा के विश्व प्रसिद्ध बौद्ध विश्व विद्यालयों में पढ़ने के लिये आते थे। इसी प्रकार तिब्बत के अनेक विद्यार्थी हिमाचल प्रदेश के मठों में विद्याध्ययन के लिये आते थे। प्रदेश के हिमालयी सीमान्त के अनेक स्थानों पर प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा भोटी तो तिब्बत में सर्वत्र ही इस्तेमाल होती है। लेकिन तिब्बत को चीन द्वारा गुलाम

बना लिये जाने के कारण तिब्बत और हिमाचल प्रदेश के वे शताब्दियों पुराने सम्बंध निलंबन की स्थिति में आ गये हैं। हिमाचल के सीमान्त की आर्थिकता पर भी इसका बुरा असर पड़ा है। सबसे बढ़कर प्रदेश के हिमालयी सीमान्त की सुरक्षा खतरे में पड़ गई है। तिब्बतियों के साथ तो हिमालयी लोगों का एक घर जैसा व्यवहार था। भाषा, खानपान, पूजा पाठ, पहनावा इत्यादि सभी स्तरों पर। परन्तु अब हिमाचल के हिमालयी सीमान्त पर चीनी आ डटे हैं। उन्होंने तिब्बतियों को खदेड़ दिया है। ये नये पड़ोसी चीनी जबरदस्ती बने पड़ोसी तो हैं हीं, साथ ही वे हमारे साथ शत्रु भाव रखते हैं। इसलिये हमारे अपने ही हित में है कि सीमा में चीनियों को खदेड़ कर तिब्बतियों को उतरी भूमि वापिस दिलवाई जाये।

तिब्बत हमारा धर्मबन्धु है

– चौधरी स्वर्ण राम

भारत तिब्बत सहयोग मंच ने पिछले कुछ समय से तिब्बत के प्रश्न को भारतीय लोगों के बीच लाकर एक स्वागत योग्य काम किया है। तिब्बत की आज़ादी के सवाल पर भारत की जनता तिब्बत के लोगों के साथ ही थी। तिब्बत के लोग भारत के लोगों के धर्मबन्धु हैं। शास्त्रों में कहा गया है कि धर्म बन्धु तो सगे बन्धु से भी बढ़कर होता है। महाभारत में युधिष्ठर के सभी भाई मौत को प्राप्त हो गये। यक्ष ने केवल एक भाई को जीवित कर देने की पेशकश की। तो युधिष्ठर ने भीम और अर्जुन को न चुनकर, नकुल और सहदेव में से ही एक को चुना। उन्होंने अपने सगे भाईयों में से किसी को नहीं चुना। क्यों धर्म बन्धु सगे भाई से भी बढ़कर है।

हमें यह मानने में कोई दिक्कत नहीं है कि तिब्बत को चीन के शिकंजे में फंसाने में कहीं न कहीं हमारी यानि भारत सरकार की भी गलती है। जब चीन ने तिब्बत पर दांत गड़ाने शुरू किये थे, यदि उसी समय हम उसका विरोध करते तो हो सकता है कि आज हालात कुछ और होते। परन्तु लगता है, पंडित नेहरू मानसिक रूप से चीन से हार चुके थे। सरदार पटेल तो चीन पर कतई विश्वास करने को तैयार नहीं थे। नेहरू चीन से डरे हुए थे, या सचमुच ही उस पर विश्वास करते थे, यह तो भगवान जाने, लेकिन यह कटु सत्य है कि नेहरू 1950 में तिब्बत की रक्षा नहीं कर पाये और 1962 में तो चीनी आक्रमण के समय भारत की भी रक्षा नहीं कर पाये।

यदि निकट भविष्य में भारत इतना शक्तिशाली होता है कि वह अपने खोये हुए इलाके दुश्मन देशों से वापिस प्राप्त कर सके तो यकीन मानिये भारत पहले अपने धर्म बन्धु तिब्बत को ही मूर्छित अवस्था से जीवित अवस्था में लाने की पहल करेगा।

हमारी कोशिश होनी चाहिए कि तिब्बत की आज़ादी के सवाल को हम भारतीय जनता के बीच में ले जायें। यह केवल भारत सरकार के स्तर का प्रश्न बन कर साऊथ ब्लाक में ही गुम न हो जाये। न ही यह केवल बुद्धिजीवियों के तर्क वितर्कों के लिए ही रहे। तिब्बत की आज़ादी का सवाल भारत की जनता का सवाल बनना चाहिये। जब तक तिब्बत आज़ाद नहीं है तब तक भारत भी सही प्रकार से सुरक्षित नहीं है। डरा हुआ भारत चीन से अपनी रक्षा नहीं कर सकता। निर्बल राष्ट्र से कोई भी मित्रता नहीं करना चाहेगा। भारत यदि बलशाली है तो उसे उसका प्रदर्शन तिब्बत को आज़ाद करवाने में करना होगा। यदि तिब्बत आज़ाद हो जाता है तो भारत की सीमाओं पर से

एक बड़ा राक्षस परे हट जाता है। भारत की उत्तरी सीमा सुरक्षित हो जाती है। इसलिए तिब्बत की आज़ादी में तो हमारा अपना स्वार्थ है। यदि स्वार्थ न भी कहें तो हमारा अपना धर्म है। क्योंकि सरकार का धर्म देश की सीमाओं की रक्षा करना है। फिर हम भारत में तो भारत को माता या देवी का रूप में मानते हैं। हम भारत माता कह कर उसका पूजन करते हैं। हिमालय तो भारत माता का सिर है। चीनी हमले ने मां के सिर को ही लहू लुहान किया हुआ है। माँ के मन्दिर के आसपास भी असुर दैत्य न आ पायें इसलिए तिब्बत से अधर्म का राज्य, असुरों का राज्य समाप्त करना होगा।

इसे विधि का विधान ही कहना चाहिए कि भारत माता और दैत्य क्षेत्र चीन के बीच में भगवान ने तिब्बत का विशाल धर्म क्षेत्र निर्माण किया। वहाँ भगवान बुद्ध स्वयं विराजमान हो गये। परम पावन दलाई लामा यदि बुद्ध के अवतार हैं तो दूसरी और उन्हें हम विष्णु का अवतार भी मानते हैं। क्योंकि महात्मा बुद्ध को शास्त्रों में विष्णु का अन्तिम अवतार माना गया है।

यह हमारे युग का दुर्भाग्य है कि तिब्बत का यह धर्म क्षेत्र अब दैत्य राज चीन के कब्ज़े में आ यगा है। यह कलियुग का नये प्रकार का देवासुर संग्राम है। भारत को इसमें देवों की भूमिका निभानी होगी। तिब्बत को मुक्त करवाना ही होगा। इसके सिवा कोई रास्ता नहीं है। न हमारे लिये न तिब्बत के लिए।

तिब्बत और भारत की संस्कृति एक है, धर्म एक है, धार्मिक ग्रन्थ एक है और सबसे बढ़कर नियति एक है। इसीलिए मैं तो कई बार कहता हूं कि तिब्बती अपनी आज़ादी के लिए भारत में बैठ कर जो लड़ाई लड़ रहे हैं, उसमें शरणार्थी वाला भाव नहीं आना चाहिए। तिब्बती भारत में शरणार्थी नहीं हैं। डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर ने जब दीक्षा लेने की जरूरत महसूस की तो उन्हें इस्लाम और ईसाई मत वालों ने बहुत लुभाया। लेकिन उन्होंने उनकी बात न मान कर बुद्ध के वचनों को ही ग्रहण किया। तिब्बत ने भी बुद्ध के वचनों को ही ग्रहण किया है। बुद्ध के वचन शान्ति के प्रतीक हैं। तिब्बत को यह शान्ति भारत ने ही दी थी। इसलिए यह भारत का ही कर्त्तव्य है कि वह इस शान्ति की रक्षा के लिए स्वयं भी शक्ति ग्रहण करे और तिब्बत को भी शक्ति दे।

तिब्बत फिलहाल अपनी आज़ादी के लिए विश्वमत की ओर देख रहा है। यू.एन.ओ. की कारगुजारी देख रहा है। तिब्बत के भीतर तिब्बत के लोग शान्तिपूर्ण सत्याग्रह करके चीनियों की आत्मा को जागृत करने का प्रयास कर रहे हैं। तिब्बत के सत्याग्रहियों से चीन की जेलें भरी हुई हैं। ये सत्याग्रही अमानुषिक अत्याचार सह रहे

हैं। उधर भारत भी पंचशील के माध्यम से चीन से भारतीय भूमि खाली करवाने की कोशिश कर रहा है। लेकिन गुरु गोबिन्द सिंह ने कहा है- ''जबै वाण लागै तबै रोस जागै''। आखिर भारत और तिब्बत में लोग कब तक अपना रोष दबा कर बैठे रहेंगे। चीन हिमालय को घायल कर रहा है। हिमालय, जो भारत और तिब्बत दोनों की जीवन-रेखा है। सब्र का प्याला भर रहा है। चेतें। सभी चेतें। यही युग की पुकार है।

तिब्बती स्वतन्त्रता के बिना अधूरी है भारत की स्वतन्त्रता

– डॉ. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

भारत तिब्बत और चीन के त्रिकोण की भूमिका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस महत्त्वपूर्ण भूमिका के दो आयाम हैं। पहला आयाम है भारत और तिब्बत के सम्बन्धों का। इसमें कोई शक नहीं कि दोनों देशों के सम्बन्ध अत्यन्त पुराने हैं। तिब्बत में तो ऐसा भी माना जाता है कि महाभारत की लड़ाई के बाद पराजित होकर भागे एक राज कुमार की सन्तान ही आज के तिब्बती हैं इसी राज कुमार ने विश्व की छत पर जाकर तिब्बती साम्राज्य की स्थापना की। तिब्बत के ही लोग अपना सम्बन्ध भारत के ऐतिहासिक राज वंशों से जोड़ते हैं। यह तो हुई भारतीय और तिब्बती इतिहास की सांझी विरासत को लेकर दंत कथाओं की बातें। उसके बाद धर्म की बात आती है। तिब्बत के लोगों ने महात्मा बुद्ध के वचनों को अपनाया। केवल मात्र अपनाया ही नहीं, उसे इतना गहरे आत्मसात किया कि बुद्ध के वचनों ने तिब्बत का मूल चरित्र ही बदल दिया। दलाई लामा बुद्ध के अवतार माने गए लेकिन इसके साथ ही हिन्दु उन्हें विष्णु का अवतार भी मानते हैं। वैसे तो इससे भी काफी अरसा पहले बुद्ध स्वयं ही विष्णु के अवतार स्वीकृत कर लिये गये थे। इस प्रकार दलाई लामा के पुनर्जन्म की परम्परा के माध्यम से भारत और तिब्बत का गर्भ नाल का सम्बन्ध बना रहा। भारत के अनेक देवी देवता बदले नामों और बदले स्वरूप में तिब्बत में भी अवस्थित हुए। सरस्वती देवी मंजू श्री के नाम से अभिशिक्त हुई और भगवान अवलोकतेश्वर के अवतार तो दलाई लामा माने ही जाते हैं। भारत से अनेक पण्डित पदम् सम्भव, शान्तिरक्षित, दीपंकर इत्यादि तिब्बत में गए और उन्होंने वहां जो सांस्कृतिक प्रवाह प्रवाहित किया उसका उद्‌गम् स्त्रोत भारत ही था। तिब्बत के कैलाश और मानसरोवर भारतीयों और तिब्बतियों को समान रूप से प्रेरणा देते हैं। भाषा की दृष्टि से भी तिब्बती भाषा भारतीय आर्य भाषाओं के नज़दीक पड़ती है। कर्मकाण्ड में संस्कृत भाषा का उतना ही महत्त्व तिब्बत में है जितना भारत में कुल मिलाकर इस सारे विशभेषण से एक बात उभर कर सामने आती है कि भारत और तिब्बत के अविभाज्य अखण्ड रिश्ते हैं। इनकी जड़ें पौराणिक काल में हैं और आज इक्कीसवीं शताब्दी में भी वे उसी प्रकार से पल्वित हो रहे हैं।

भारत और तिब्बत के सम्बन्धों का विश्लेषण करने वाले ज्यादातर विंश्लेषक यहीं आकर ठहर जाते हैं। जैसा कि हमने उपर भी संकेत किया है कि भारत तिब्बत

सम्बन्धों की ऐतिहासिक पृष्ठ भूमि मात्र उसका एक आयाम है। दूसरा आयाम यह है कि तिब्बत भारत की चीन से रक्षा करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता रहा है। भारत के उत्तरी सीमान्त पर तिब्बत आता है। तिब्बत कोई छोटा देश नहीं है। लम्बाई और चौड़ाई के विस्तार में तिब्बत का क्षेत्रफल पूरे पश्चिमी यूरोप जितना है। इस तिब्बत से परे चीन पड़ता है। भारत और चीन के मध्य में तिब्बत शताब्दियों से एक तटस्थ राष्ट्र की भूमिका निभाता रहा है। तिब्बत और चीन के सम्बन्ध भी कोई बहुत ज्यादा मधुर सम्बन्ध नहीं रहे हैं। तिब्बती प्राय: चीनियों पर अविश्वास ही करते हैं। दोनों देशों का सारा इतिहास परस्पर अविश्वास का ही इतिहास है। इतिहास में प्राय: दोनों देश आपस में लड़ते भी रहे हैं। कभी तिब्बत का पलड़ा भारी रहा है और कभी चीन का पलड़ा भारी रहा है। तिब्बत द्वारा बौद्धमत ग्रहण करने के बाद प्राय: चीन अपनी दादागिरी तिब्बत को दिखाता रहा है। जिन दिनों मंचूरिया के लोगों ने चीन पर कब्जा किया हुआ था उन दिनों कुछ सीमा तक तिब्बतियों और मंचू नरेशों के सम्बन्ध अच्छे रहे हैं। यह सम्बन्ध इतिहास में पुरोहित और यजमान के सम्बन्ध कहे जाते हैं। तिब्बत को पुरोहित का दर्जा हासिल था और मंचूरिया नरेश उसके यजमान थे। वैसे भी तिब्बती मंचू नरेशों को मंजू श्री का अवतार मानते थे, परन्तु 13वें दलाई लामा तक आते आते तिब्बत और मंचूरिया के पुरोहित यजमान के यह सम्बन्ध भी समाप्त हो गए।

20वीं शताब्दी के प्रारम्भ में ही चीन भारत के हिमालयी क्षेत्र पर आंख लगाए बैठा था। मंगोलिया, तुर्कीस्तान और मंचूरिया को निगलने के बाद तिब्बत को तो वह हड़पना ही चाहता था। तिब्बत के पार भारत के हिमालयी क्षेत्रों पर भी उसने पैनी गिद्ध दृष्टि लगी हुई थी। इसका एक सशक्त प्रमाण तब मिलता है जब मंचू वंश के अन्तकाल में चीनी सेनाओं ने ल्हासा पर कब्ज़ा कर लिया था तब चीनी प्रशासनिक अधिकारी और सेना की टुकड़ियां लद्घाख, अरुणाचल प्रदेश और असम तक मंडराने लगी थीं और अनेक जगह पर्वत शिखरों पर चीनी पताकाएं फहराने लगी थीं। परन्तु चीन के लिए भारत के उत्तरी सीमान्त तक आ पाना इसलिए लगभग असम्भव था कि इतने विशाल तिब्बत को पूरी तरह रौंदकर भारत के द्वार पर दस्तक देना सरल कार्य नहीं था। इस प्रकार तिब्बत भारत का प्राकृतिक प्रहरी बना हुआ था। कुछ लोग आज जब भारत और चीन के ऐतिहासिक सम्बन्धों का विश्लेषण करते हुए इस बात की दुहाई देते हैं कि 1962 से पहले भारत और चीन में कभी संघर्ष नहीं हुआ। केवल एक दूसरे के यहाँ बौद्ध भिक्षु ही आते जाते थे, सेनाएं नहीं, तो वे इस बात को भूल जाते हैं कि इस पूरे ऐतिहासिक काल में भारत और चीन की सीमाएं कभी एक साथ

नहीं लगीं। उसके बीच में तिब्बत डटा हुआ था। कभी हाथ में तलवार लेकर और कभी शान्ति मंत्रो का उच्चारण करता हुआ।

अंग्रेज़ तिब्बत की इस रणनीतिक महत्ता को समझते थे। इसलिए उन्होंने तिब्बत के साथ अनेक प्रकार की सन्धियां की। परन्तु शायद ब्रिटिश साम्राज्य यह मानकर चलता था कि तिब्बत को ज्यादा खतरा रूस से है चीन से नहीं। इसलिए उन्होंने रूस को तिब्बत से परे रखने के लिए तिब्बत पर चीन का अधिराजत्व स्वीकार किया। चाहे यह स्वीकृति केवल मात्र कागज़ों पर ही थी। यथार्थ में तिब्बत किसी भी प्रकार के चीनी अधिराज्य से मुक्त ही था, परन्तु ब्रिटिश साम्राज्य ही इस स्वीकारोक्ति से तिब्बत की स्वतन्त्रता तो खतरे में पड़ी ही साथ ही भारत की सुरक्षा भी खतरे में पड़ गई। वास्तव में तिब्बत आज जिस संकट का सामना कर रहा है उसके लिए बहुत सीमा तक ब्रिटिश साम्राज्यवाद की उपनिवेशवादी नीति ही जिम्मेदार कही जा सकती है। प्रभुसत्ता और अधिराज्य इस प्रकार की पश्चिमी राजनैतिक शब्दावली न तो चीनी भाषा में उपलब्ध है और न ही तिब्बती भाषा में। यह ठीक है कि चीन तिब्बत पर अपना प्रभाव जमाने का प्रयास करता रहा है। इस संघर्ष में कभी चीन का पलड़ा भारी रहा तो कभी तिब्बत का। तिब्बत उस प्रभाव को नकारने का प्रयास भी करता रहा है। इस संघर्ष में कभी चीन का पलड़ा भारी रहा तो कभी तिब्बत का। तिब्बतियों ने मानसिक रूप से अपने आपको कभी चीनी राष्ट्र का अंग नहीं माना। ब्रिटिश साम्राज्यवाद को मध्य एशिया में चूंकि रूस के बढ़ते प्रभाव से खतरा था और वह उसे अपने भारतीय उपनिवेश से भी परे रखना चाहता था, इसलिए उसने तिब्बत को रूसी प्रभाव से मुक्त रखने के प्रयास में चीन से तिब्बत को लेकर समझौते किए और तिब्बत पर चीनी अधिराज्य को भी स्वीकार कर लिया। दूसरी ओर तिब्बत में ब्रिटिश प्रभाव बढ़ाने के लिए 1903 में कर्नल फ्रांसीस यंग हसबैंड के नेतृत्व में सैनिक टुकड़ियां भी ल्हासा तक भेज दीं। क्योंकि चीन की स्थिति उन दिनों अत्यन्त दयनीय थी, इसलिए ब्रिटिश साम्राज्यवादियों को लगता होगा कि तिब्बत पर चीन का अधिराज्यत्व स्वीकार करने से यथार्थ में कोई अन्तर पड़ने वाला नहीं है। कागज़ों पर चीनी अधिराज्यत्व का अन्वेषण ब्रिटिश साम्राज्यवादियों ने किया और यथार्थ में तिब्बत में अपने शक्ति केन्द्र स्थापित किए। यह नीति ब्रिटिश साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी परम्पराओं के अनुकूल थी। शायद इसी लिए लार्ड कर्जन ने कहा भी था कि तिब्बत पर चीनी अधिराज्यत्व एक मिथक से ज्यादा कुछ भी नहीं है। परन्तु लार्ड कर्जन यह भूल गये कि यह मिथक ब्रिटिश साम्राज्यवाद का ही निर्माण किया हुआ था। यथार्थ में तिब्बत पर चीनी प्रभुसत्ता कभी नहीं रही और न ही चीनी अधिराज्यत्व।

परन्तु अंग्रेजों की चीन से की हुई ये सन्धियां कालान्तर में तिब्बत को बहुत मंहगी पड़ीं। च्यांगकाईशेक की सरकार के पतन के बाद ज्यों ही चीन में नव प्राणों का संचार हुआ और रूस की सहायता से उसने शक्ति ग्रहण करनी शुरू की तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद की इन्हीं सन्धियों का हवाला देकर उसने तिब्बत पर अपना अधिकार जताना शुरू कर दिया। संकट की इस घड़ी में अंग्रेज तो तिब्बत का साथ छोड़ ही गये भारत ने भी तिब्बत का साथ नहीं दिया। अंग्रेजों द्वारा तिब्बत का साथ छोड़ देने से इंग्लैंड को किसी प्रकार का अन्तर पड़ने वाला नहीं था क्योंकि इंगलैंड को अब अपने किसी साम्राज्यवाद की रक्षा नहीं करनी थी। परन्तु भारत द्वारा तिब्बत का साथ छोड़ देने से भारत एक प्रकार से अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मार रहा था। क्योंकि तिब्बत पर चीनी अधिकार को स्वीकार कर लेने का अर्थ था चीन का भारत के उत्तरी सीमांत तक आ पहुंचना। और उसके बाद भारत और तथाकथित चीनी तिब्बत के बीच सीमा विवाद को तो भड़कना ही था। क्योंकि चीन ने 1914 में शिमला में तिब्बत और भारत के बीच हुए समझौते के अन्तर्गत निर्मित मैकमहोन रेखा को पहले ही अस्वीकार कर दिया था। इस लिए तिब्बत पर चीनी अधिकार होते ही यह स्पष्ट था कि भारत और तिब्बत की 2400 मील की सीमा एकदम से भड़क उठेगी। भारत ने अपने राष्ट्रीय हितों को न समझते हुए पहले दिन से ही तिब्बत पर चीनी अधिकार को स्वीकार कर लिया। पण्डित नेहरू ने इस सम्बन्ध में सरदार पटेल को जो ऐतिहासिक पत्र लिखा था उसमें इस बात के संकेत मिलते हैं कि पण्डित नेहरू तिब्बत बचा पाने में अपनी विवशता का अनुभव कर रहे थे। इसलिए वे तिब्बत की स्वतन्त्रता से एक दर्जा नीचे स्वायत्तता के इच्छुक थे। परन्तु पण्डित नेहरू चीन के साम्राज्यवादी चरित्र को भूल गए और एक बार जब उन्होंने तिब्बत को चीन का हिस्सा स्वीकार ही कर लिया तो तिब्बत को लेकर भारत द्वारा उठाए गये समस्त मुद्दे चीन के आन्तरिक मामलों में हस्ताक्षेप ही माने जाते और चीन ने ऐसे आरोप लगाए भी। 1954 के समझौते में भारत सरकार ने ब्रिटिश काल से चले आ रहे तिब्बत में समस्त भारतीय अधिकारों को चीन के समक्ष समर्पित कर दिया, लेकिन उसके बदले में चीन से तिब्बत के लिए रियायत नहीं ले सके। तिब्बत को लेकर नेहरू की नीति दो गलत अवधारणाओं पर अवस्थित थी। प्रथम तो चीन की शक्ति का भय और दूसरा चीन के मूल ऐतिहासिक चरित्र को समझने की न समझी। दरअसल पण्डित नेहरू जाने या अनजाने में यह भ्रम पाल रहे थे कि चीन भारत पर आक्रमण नहीं करेगा। परन्तु यह भ्रम शुतुरमुर्ग की तरह रेत में गर्दन छुपाने से ज्यादा कुछ नहीं था। 1957 में मोरार जी देसाई ने जनरल थमैया से पूछा था कि अक्साई चिन में चीन द्वारा निर्मित सड़क की सूचना सेना को कब मिली थी? जब थमैया ने बताया कि लगभग दो वर्ष पहले तो मोरार जी देसाई ने कहा कि

तुमने कुछ किया क्यों नहीं। इस पर थमैया का उत्तर था कि इसकी सूचना रक्षा मंत्री कृष्णन मेनन को दे दी गई थी, परन्तु उन्होंने कहा था कि खतरा उस ओर से नहीं इस ओर से है। अर्थात् भारत को खतरा चीन से नहीं पाकिस्तान से है। चीन अक्साई चिन के जिस निर्जन क्षेत्र में करोड़ों रूपये लगाकर सड़कें बना रहा था उनका लक्ष्य जनता को सुविधा देना न होकर भारत की सीमा तक सैनिक साजो सामान लाकर, भारत की सीमा के इस पार आना था। इधर भारत का रक्षा मंत्री जानबूझकर आंखे बन्द किए कह रहा था कि खतरा उधर से नहीं है। जिस खतरे का आभास सरदार पटेल को था, आचार्य रघुवीर को था, जो सीमाओं पर दस्तक दे रहा था, उसके प्रति नेहरू और मेनन की जोड़ी अनजान क्यों बनी थी?

यह तिब्बत का दुर्भाग्य ही कहा जायेगा कि अंग्रेज़ों ने ल्हासा अभियान के बाद जाने या अनजाने में तिब्बत पर चीन को कब्ज़ा करने का बहाना प्रदान किया। ल्हासा सन्धि अन्तर्राष्ट्रीय राजनैतिक शब्दावली में तिब्बत को एक स्वतंत्र राष्ट्र का दर्जा देती थी और उसके अनुच्छेद 9 में तिब्बत के सन्दर्भ में चीन को भी विदेशी राज्य माना गया था। लेकिन इस सन्धि के बाद ब्रिटिश सरकार ने पीकिंग सन्धि में फिर तिब्बत के बारे में निर्णय लेने का चीन को अधिकारी मान लिया। 1914 में भारत-तिब्बत व चीन की त्रिपक्षीय वार्ता में तिब्बत ने एक स्वतंत्र राष्ट्र के नाते हिस्सा लिया और जब चीन इस वार्ता में पीछे हट गया तो भारत और तिब्बत ने ऐतिहासिक सन्धि की जो शिमला समझौते के नाम से जानी जाती है। इस समझौते में भी भारत ने तिब्बत को एक स्वतंत्र राष्ट्र का दर्जा दिया।

लेकिन ब्रिटिश सरकार ने तिब्बत के बारे में तब कन्नी काट ली जब अन्तर्राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में उसकी प्राथमिकताएं बदल गईं और उसके हित तिब्बत को स्वतंत्र राष्ट्र स्वीकारने में नहीं रहे। लगभग यही स्थिति अमेरिका की रही। अमेरिका तिब्बत को स्वतंत्र राष्ट्र का दर्जा देने को तैयार नहीं था, लेकिन शीत युद्ध में साम्यवादी चीन के खिलाफ उसका हथियार के तौर पर इस्तेमाल करने में ज्यादा रूचि रखता था। पीकिंग में च्यांग काई शेक की सरकार के पतन के बाद जब मुख्य भूमि पर साम्यवादी सेनाओं का कब्ज़ा हो गया तो अमेरिका ने च्यांग काई-शेक की सरकार ताईवान में स्थापित करवा दी। अमेरिका ने तो चीन की साम्यवादी सरकार को चीन के रूप में मान्यता ही नहीं दी थी। वह अपने समस्त व्यवहार में च्यांग काई शेक की टापू वाली सरकार को ही चीन गणतन्त्र के रूप में मान्यता देता था और संयुक्त राष्ट्र संघ में चीन का प्रतिनिधित्व च्यांग काई-शेक की टापू वाली सरकार ही करती थी। सभी जानते हैं कि च्यांग काइ-शेक की सरकार अमेरिका के रहमोकरम पर ही टिकी हुई थी।

यदि अमेरिका चाहता तो ताईवान सरकार से, जो चीन का प्रतिनिधित्व करती थी, तिब्बत को स्वतंत्र राष्ट्र के रूप में मान्यता दिलवा सकता था। लेकिन ताज्जुब है अमेरिका द्वारा निर्मित ताईवान सरकार भी तिब्बत को चीन का ही हिस्सा मानती रही और दूसरी ओर अमेरिका निर्वासित तिब्बतियों को गुरिल्ला युद्ध का प्रशिक्षण भी देता रहा।

अमेरिका और ब्रिटेन दोनों ही तिब्बत को लेकर ये राजनैतिक कलाबाजियां लगा सकते थे। क्योंकि न तो उनकी तिब्बत में सीमा लगती थी न ही तिब्बत की विश्व शीत युद्ध में कोई महत्त्वपूर्ण भूमिका हो सकती थी। लेकिन भारत के लिए तिब्बत की स्थिति और महत्ता वह नहीं थी, जो ब्रिटेन और अमेरिका के लिए थी। अमेरिका को केवल चीन में शीत युद्ध का भय था, लेकिन भारत को उससे प्रत्यक्ष युद्ध का खतरा था। ब्रिटेन को केवल हांगकांग के चले जाने का भय था, जिसे वह पहले ही लीज़ के खत्म हो जाने पर चीन को वापिस सौंपने का मन बना चुका था। लेकिन तिब्बत के चीन के कब्ज़े में जाने पर भारत की सुरक्षा को खतरा था। भारत ने तिब्बत विषयक रणनीति बनाते समय और खतरे को पहचानने में आत्मघाती भूल की।

भारत सरकार भारत और तिब्बत (अब चीन) के बीच सीमा निर्धारित करने के लिए मैक महोन रेखा को प्रमाण मानती है। चीन इस मैक महोन रेखा को अमान्य करता है। मुख्य प्रश्न यह है कि इस मैक महोन रेखा का आधार क्या है? इसका जन्म कहां से हुआ? इस का जन्म 1914 में शिमला में हुई भारत और तिब्बत के बीच एक सन्धि से हुआ था। चीन ने इस वार्ता में शुरू में हिस्सा लिया, लेकिन बाद में उसने इसके निर्णयों से स्वयं को अलग कर लिया। तब भारत ने तिब्बत के साथ अपना सीमा निर्धारण कर लिया। यही सीमा रेखा मैकमहोन है। चीन का यह मानना है कि तिब्बत क्योंकि एक स्वतंत्र राष्ट्र नहीं था, वह चीन का ही हिस्सा था, इसलिए उसे भारत के साथ यह सन्धि करने का अधिकार ही नहीं था।

इस प्रकार भारत-तिब्बत (चीन) के बीच सीमा निर्धारक मैकमहोन रेखा की वैधता या अवैधता इसी एक बिन्दु पर निर्भर करती है कि तिब्बत एक स्वतंत्र राष्ट्र था या नहीं। यदि वह स्वतंत्र राष्ट्र नहीं था तब मैकमहोन रेखा भी अवैध है। अंग्रेज़ों के भारत से चले जाने के बाद पंडित नेहरू के नेतृत्व में भारत सरकार ने स्टैंड लिया कि तिब्बत स्वतंत्र राष्ट्र नहीं है, वह चीन का हिस्सा है, लेकिन मैकमहोन रेखा वैध है। यह स्टैंड अपने आप में ही विरोधाभासी है। मैकमहोन रेखा का अस्तित्व ही तिब्बत के स्वतंत्र राष्ट्र के अस्तित्व से जुड़ा हुआ है। ऐसा नहीं पंडित नेहरू अपने इस स्टैंड के बीच के खोखलेपन को समझते नहीं थे। वे सोचते थे यदि तिब्बत की बलि चढ़ा

देंगे तो शायद चीन प्रसन्न होकर मैकमहोन रेखा की वैधता को स्वीकार कर लेगा। या फिर तिब्बत को कम से कम स्वायत्तता तो प्रदान करेगा ही। चीन को समझने के लिए चीन के इतिहास को जानना ज्यादा जरूरी है। भारतीयों से ज्यादा चीनियों को तिब्बती लोग समझते हैं। इसलिए जब भारत तिब्बत की बलि देने की तैयारियाँ कर रहा था तो तिबबत के लोगों ने भारत सरकार को चेताया था कि चीन इस एक बलि से प्रसन्न नहीं होगा वह अगली बार भारत की बलि भी लेगा। तिब्बतियों का अनुमान बिल्कुल ठीक था। 1962 में चीन ने भारत माता को वस्त्रविहीन करने का प्रयास किया। महाभारत में कहा गया है कि सीमाएँ राष्ट्र देवी का वस्त्र होती हैं। सीमाओं पर आक्रमण एवं बलात अधिकार से राष्ट्र देवी अपमानित होती है। वह चीन ने किया। चीनी जेलों में 21 वर्ष रहे पालदेन ग्याछो लिखते हैं कि 1962 में भारत की पराजय का चीनी जेल अधिकारी जश्न मनाते थे और तिब्बती कैदियों को चिढ़ाते थे कि जिस भारत पर आशा लगाये बैठे हो, उसका हमने यह हश्र किया। तिब्बती उदास थे। 1962 में भारत की शर्मनाक हार केवल भारत की हार नहीं थी, बल्कि तिब्बतियों की दूसरी हार थी।

लेकिन मुख्य प्रश्न यह है कि 1962 के बाद भी क्या भारत सरकार ने देश के उत्तरी सीमान्त की सुरक्षा में तिब्बत की आज़ादी की प्रासंगिकता को पहचाना है? ताज्जुब है कि भारत अब सम्वत् 2057 में भी तिब्बत को चीन का हिस्सा मान कर मैकमहोन रेखा के बारे में मानचित्रों के आदान प्रदान में लगा हुआ है। वह विरोधाभास के उसी भंवर जाल में पचास साल बाद भी उलझा हुआ है।

भारत में ऐसे चीनविदों की कमी नहीं जोकि भारत और चीन के सम्बन्धों को सुधारने के लिए ले-दे की नीति पर चलने की सलाह देते हैं। चीन तो मानता है कि साम्राज्यवादियों ने चीन से बर्मा, लाओस, वियतनाम, कोरिया (अन्नम), आसाम तथा अरूणाचल अलग कर दिये थे और इस सब पर उसका वैध हक बनता है। भारत, आसाम और अरूणाचल चीन को देकर मित्रता कर सकता है क्या? भारतीय संसद ने चीन के कब्ज़े से जिस भूमि को छुड़ाने का प्रण किया था क्या उसे भूला जा सकता है? चीन की विस्तारवादी नीति को कहां तक तुष्ट किया जा सकता है? चीन भारत को क्या देने को तैयार है? वह अधिक से अधिक सिक्किम को भारत का हिस्सा मानने को तैयार होगा? भारत में सिक्किम का विलय अन्तिम रूप से हो चुका है तो क्या अब हमें चीन की मुहर की जरूरत है?

चीनी मानसिकता यह मानती है कि आकाश के नीचे जितनी भी धरती और देश हैं वे सभी चीन के राजा के हैं। सामान्य कूटनीति के अनुसार अनेक देशों के राजदूत

चीनी राजा के दरबार में थे और सामान्य कूटनीतिक परम्पराओं के अनुसार ही वे चीन के राजा को अपने देश की ओर से उपहार या भेंट प्रस्तुत करते थे। चीनी मानसिकता उसका विश्लेषण एवं व्याख्या यह कहकर करती थी कि इन देशों ने चीन की अधीनता स्वीकार कर ली है और इन्होंने स्वयं को विशाल चीनी साम्राज्य का अंग स्वीकार कर लिया है। चीन में ऐसे ढ़ेरों ऐतिहासिक ग्रंथ मिल जाएंगे जिनमें जापान, कोरिया, तिब्बत, वियतनाम, मध्य एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के अन्य सभी देशों को चीनी साम्राज्य का अंग बताया गया है। अथवा यह कहा गया है कि इन देशों ने स्वयं को चीन से निकृष्ट मानकर उसकी सम्प्रभुता को स्वीकार कर लिया गया है इसके प्रमाण में केवल यही कहा गया है कि इन सभी देशों के राजदूत चीनी राजा के दरबार में आकर उसे भेंट उपहार इत्यादि दिया करते थे। इसी मानसिकता के चलते चीनी सम्राट तिब्बत से परे सम्पूर्ण हिमालय को भी अपना ही अंग मानता था। चीनी मानसिकता की एक विलक्षणता और है। इतिहास के किसी मोड़ पर यदि चीन सशक्त हुआ तो वह इन देशों पर बलपूर्वक आधिपत्य जमाने का प्रयास करता था और यदि निर्बल हुआ तो इन देशों पर अपनी समप्रभुता का दरबारी कागज पत्रों में ही उल्लेख करके सन्तुष्ट रहता था।

इसका एक रोचक उदाहरण आधुनिक काल में चीन द्वारा दौत्य सम्बन्धों एवं व्यवहार ही नित नवीन व्याख्याओं में मिलता है। आधुनिक काल में विभिन्न देशों में राजदूत स्तर पर सम्बन्ध ज्यादा औपचारिक और नियमों की लम्बी फहरिस्तों में बंधने लगे। जाहिर है कि चीनी राजा के दरबार में भी मध्य एशिया और दक्षिण पूर्व एशिया के देशों के अतिरिक्त यूरोप के देशों के राजदूत भी आने लगे। अपने दरबारी कागज पत्रों में चीनी सम्राट इसे भी इन देशों द्वारा चीन की श्रेष्ठता स्वीकार कर लेने का प्रमाण बताने लगे। अफीम युद्ध में जब ब्रिटेन के हाथों चीन की निर्णायक पराजय हुई और चीनी सम्राट के दरबारियों द्वारा लाख मिन्नतें करने पर भी गोरे राजदूतों ने दरबार में हाजिर होते समय शिष्टाचार वश भी चीनी सम्राट के आगे सांकेतिक झुकना भी स्वीकार नहीं किया तो दरबार के कागजपत्रों की अखंड परम्परा का पेट भरने के लिए चीनी इतिहासकारों ने दर्ज किया कि इन गोरे लोगों की शारीरिक सरंचना भगवान ने इस प्रकार की बनाई है कि इनके लिए झुकना सम्भव नहीं है। इस घटना से चीनी साम्राज्यवादी मानसिकता और उसकी नसली श्रेष्ठता की अवधारणा का पता चलता है।

चीन सरकार की एक सरकारी पत्रिका ''चायना टुडे'' (देखें दिसम्बर 2000 का अंक) में प्रसिद्ध चीनी विद्वान पेंग चुनयान ने लिखा है कि साम्यवादी क्रांति के

बाद भी चीन कूटनीतिक क्षेत्रों में विश्व को लेकर इसी सम्प्रभु-अधीनस्थ की चीनी मानसिकता से परिचालित होता रहा। चीन को विश्व का केन्द्र मानकर और बाकी देश छोटे-छोटे उपग्रहों की हालत में इस केन्द्र के इर्द गिर्द घूमते हैं, इसी चीनी मानसिकता से साम्यवादी क्रांति के बावजूद भी चीन और रूस का टकराव हुआ। सैद्धांतिक मतभेद जो भी होंगे, चीनी रूसी विवाद के केन्द्र में चीन की यह मानसिकता भी काम कर रही थी कि बीजिंग विश्व क्रांति के केन्द्र में रहे और उसका सूत्रधार बने। इक्कीसवीं शताब्दी में चीन के प्रसिद्ध विद्वान पेंग की यह स्वीकारोक्ति चीन और भारत के सम्बन्धों को समझने में मदद कर सकती है। पेंग यह भी कहते हैं कि चीन ने अपनी सर्व श्रेष्ठता और विश्व के केन्द्र में होने की यह मानसिकता 1970 के बाद ही छोड़ी। इसका अर्थ यह हुआ कि माओं के काल तक, जिसे आज तक चीन साम्यवाद का पुरोधा कहता रहा है, वास्तव में सारी चीनी रीति नीति उसी पुरानी साम्राज्यवादी चीनी मानसिकता से संचालित होती थी। यहाँ यह भी ध्यान देना होगा कि इसी काल में तिब्बत और भारत, चीनी आक्रमण का शिकार हुए और दोनों ही उससे परास्त भी हुए। चीन ने इसी काल में कोरिया रूस व कुछ अन्य पड़ोसी देशों को धमकाने के भी प्रयास किए। परन्तु विश्व शक्ति संतुलनों के चलते वह इसमें सफल नहीं हो पाया।

भारत की जनता ने तिब्बत का सदा साथ दिया है, उसे अपना माना है। दलाई लामा के प्रति भारतीयों की श्रद्धा इसका प्रमाण है। भारत सरकार ने भले ही कभी साथ न दिया हो उसकी अपनी विवशताएँ हो सकती हैं परन्तु भारत की जनता तिब्बत के साथ है। भारत सरकार और भारतीय जनता के मत को एक सा नहीं मानना चाहिए। यदि जनमत प्रबल रूप से तिब्बत के साथ उठेगा तो सरकार का मत भी पक्ष में हो ही जाएगा।

यूरोप और अमरीका के लिए तिब्बत का प्रश्न मानवाधिकारों का अथवा नैतिकता का प्रश्न हो सकता है या फिर समय-समय पर चीन की बाजू मरोड़ने का साधन हो सकता है। लेकिन तिब्बत का साथ देना भारत के लिए शुद्ध सुरक्षा स्वार्थ की दृष्टि से भी आवश्यक है। तिब्बत जैसे राष्ट्र का बफ़र राज्य के रूप में बने रहना भारत के हित में है। तिब्बत की सहायता करना सही मानों में भारत की अपनी सहायता है।

शायद एन.डी.ए. की सरकार पहली सरकार है जिसके रक्षामन्त्री ने स्पष्ट रूप से कहा है कि खतरा उधर से नहीं है, इधर से है अर्थात् पाकिस्तान से नहीं चीन से है। रही बात भारत सरकार की नीति की, इतिहास साक्षी है, कि जनमत के आगे सरकारों

के निर्णय बदलते आए हैं। आखिर नेहरू कृष्णन मेनन को हटाने के लिए विवश हुए तो जनमत के ही दबाव में।

इस लिए तिब्बत के पक्ष में न्यायसंगत स्टैंड लेने के लिए भारत सरकार को विवश करने के लिए भारत में जनमत निर्माण की आवश्यकता है। 1962 की पराजय के बाद भारतीय जनमत के प्रबल दबाव में ही नेहरू ने तिब्बतियों के प्रति अपने दृष्टिकोण को बदला था। ज्यों ज्यों प्रबुद्ध वर्ग में उत्तरी सीमान्त की सुरक्षा के प्रति चेतना बढ़ेगी त्यों त्यों सरकार तिब्बत के स्वनिर्माण के अधिकार के पक्ष में झुकेगी।

རྒྱ་གར་འཕགས་པའི་ཡུལ་ནི་ངའི་ཆེད་དུ་སྟོན་པ་བཅོམ་ལྡན་འདས་དང་།
ནང་པའི་ཆོས་འབྱུང་སའི་གནས་བྱིན་བརླབས་ཅན་ཞིག་ཡིན།

ཏཱ་ལའི་བླ་མ་བསྟན་འཛིན་རྒྱ་མཚོ།

पु॰ दलाई लामा

मेरे लिए भारत पवित्र भूमि है क्योंकि यह भगवान बुद्ध और बौद्ध धर्म की जननी है

तिब्बत-चीन में संवाद जरूरी

– डॉ. कारे नारायण पाठक

मैं यह मानता हूं कि विश्व की अधिकांश समस्याएं लड़ाई झगड़े, वाद-विवाद, मनमुटाव आपसी वार्ता से सुलझाये जा सकते हैं। वैसे भी नया युग संवाद का युग है, तलवार का नहीं। तिब्बत का प्रश्न भी इसी संवाद एवं बातचीत के माध्यम से हल किया जा सकता है। तिब्बत के धर्म गुरू दलाई लामा की प्रशंसा करनी होगी कि उन्होंने विपरीत परिस्थितियों में भी चीन से संवाद समाप्त करने की बजाये किसी न किसी रूप में संवाद बनाये रखने का ही प्रयास किया। विश्व समुदाय को इस मामले में दलाई लामा का साथ देना चाहिए, तभी दलाई लामा बातचीत के माध्यम से समस्या का समाधान खोजने के रास्ते पर आगे बढ़ सकेंगे। मुझे आशा है यह संवाद और वार्ता ही तिब्बतियों के दु:खों का अंत करेगी।

विवाद समाधान के कई तरीके हैं। बल प्रयोग उनमें से एक है तो संवाद का प्रयोग दूसरा है। जैसे-जैसे विश्व सभ्य होता जा रहा है त्यों-त्यों उसने आपसी विवादों के समाधान के लिए बातचीत का श्रेयस्कर माना है। ऐसा नहीं कि बल प्रयोग कम हुआ है या फिर अन्तर्राष्ट्रीय जगत में निर्बल का दोहन समाप्त हो गया हो। लेकिन इसके बावजूद सभी मानते हैं कि बल प्रयोग अमानवीय है। उससे अस्थायी समाधान तो खोजे जा सकते हैं लेकिन स्थायी हल नहीं निकल सकता। संवाद से खोजा गया हल विश्व शान्ति का कारगार उपाय है। तिब्बत समस्या भी द्विपक्षीय है। इसमें एक प्राकृतिक पक्ष तिब्बत है। तिब्बतियों की संतुष्टि के बिना हमारा कोई भी समाधान प्रभावी नहीं हो सकता। दलाई लामा वर्तमान युग में शान्ति के अग्रदूत हैं। जब अपना देश पराधीन हो, तब शान्ति व संवाद के पक्ष में संतुलन बनाये रखना बहुत मुश्किल होता है। दलाई लामा उसी संतुलन की साधना कर रहे हैं। उनके मन में तो सामान्य चीनियों के प्रति भी कोई दुर्भावना नहीं है। दुर्भावना अज्ञानता से उपजती है। दलाई लामा ने तिब्बत के प्रश्न पर कभी भी चीन से वार्ता के द्वार बन्द नहीं किये। इन्ही द्वारों के रास्ते तिब्बत के भविष्य की प्राणवायु आयेगी। मुझे पूरा विश्वास है कि दलाई लामा तिब्बत की समस्या का सर्वसम्मत हल ढूंढ ही लेंगे। वह भी अपने जीवन काल में ही।

TIBETAN CARD IS THE STRONGEST CARD

– Karma Chhophel

If we look at the long history of India, Tibet and China, we will find that nature had placed them in a situation where they were bound to be neighbours due to their geographical situation. This is something over which they had no control and the question of any choice did not arise. Ties of Tibet with India have been warmer and much closer as compared to China because Tibetans always felt that they were nearer to India historically, economically, racially and linguistically. There has been free mixing of races all along the northern Indo-Tibetan border and people speak Bhoti with slight dialectical variations from Ladakh to Arunachal all along the northern border. Our ties with India were cemented by Buddhism. Buddhism came from India and it shaped our attitudes, thinking and living patterns. In fact our Mecca and Madina has always been in India. As compared to this our relations with China have been economic and to a minimal level racial too. Tibetans became Lamas of Chinese kings too. His Holiness remarks jokingly that we had best of both the worlds as we got our silken clothing and good food from China and religion and thought from India. Our ties with China have never been very close as Tibetans viewed Chinese presence with suspicion. The kind of affection, love, affinity and warmth we felt for India has been unique throughout our old history. India is our guru & Tibet is her *Chela*.

There has been peace all along our northern border and history has not witnessed any conflict between China and India. It was due to the presence of Tibet between the two, a nation of 2.5 million sq. kilometres, as big as four times the size of France. The buffer state of Tibet was really helpful in maintaining peace. Tibet on its part was not only peaceful but also loved seclusion and remained strictly neutral. Tibet was devoted to religion and philosophy, so peace prevailed.

Some historians have tried to tell us that Tibet was part of China but that is not true. Even during the rule of Manchu and Mongol kings, Tibet maintained its stand of basic independence. Tibet had well defined borders with China. Even if there was Chinese domination for short periods, Tibet remained independent for most part of its written history. It is only after 1950 that Tibet was totally conquered and enslaved by Communist China.

I am thankful to the Bharat-Tibet Sahyog Manch for observing this fortnight in October as 'Tibet Mukti Pakhwara' which reminds us of the Chinese attack on Tibet (7th October, 1950) and India (20th October, 1962). After the shameful defeat at the hands of Chinese Army, the Indian Parliament had passed an unanimous resolution to redeem every inch of Indian land grabbed by China in the 1962 war. Now most of the parliamentarians who passed this resolution are not with us and the people who had undergone that humiliation have grown old and infirm. Now nobody talks of taking the land back. **Bharat Tibet Sahyog Manch** is reminding the present generation of Indians to avenge that defeat.

As far as I am concerned, I came to India in 1959 when I was only 9 years old and now I am in my fifties and I feel myself as good and patriotic an Indian as anybody else though I am not a bonafide citizen of India. The debacle of 1962 was most insulting and India suffered heavy losses on the border. In that short lived war 1383 Indian soldiers were killed, 3968 injured and 1968 were missing. These figures are from the Army Register of 1965. All this happened as Tibet had been eliminated as a buffer state.

Another grave danger that India faces from the presence of China in Tibet is from the militarisation of Tibet. Now, India, Pakistan and China are nuclear powers, so the threat of nuclear conflict is looming large on this continent. Chinese have no conscience and they will not hesitate to use nuclear devices provided they are convinced that they will win. China is already funding and training militants from Tripura and Arunachal and providing them with latest weapons and training. China is giving arms and nuclear technology to Pakistan so that they can both wage a war against India. India has entered into a treaty of friendship and good will with Russia to face this challenge and to save itself from unscrupulous neighbours.

China has stationed 5 lakh troops in Tibet out of which 3 lakh are on Indian border and rest are in Lhasa and other parts of Tibet. It has built 5 missile bases on Indian border. 81C.M.B.'s, 70 M.R.M.'s and 20 I.R.M's have been stationed in Tibet and all these missiles are directed against India. Chinese missiles can hit Indian ships stationed in the Indian Ocean, and all the big cities and nuclear installations are on its target. A big underground nuclear plant by the name of 7th academy has been built in hills which is safe from any foreign attack. It is as big as a big town like Dharamshala. Without the freedom of Tibet, this threat to Indian security can never be eliminated.

China has built roads all along the Indian border for deployment of Army. Three railway tracks from China to Lhasa have been built to bring military hardware close to Indian border and in Lhasa.

Tibetans want complete freedom though His Holiness is talking about autonomous Tibet and the Middle Path. Believe me that independence of Tibet is as dear to Dalai Lama ji as to any other Tibetan though the compulsions of diplomacy have forced him to change his stand as a strategy. The prayer composed by His Holiness and sung by each and every Tibetan in all the ceremonial gatherings is a clear testimony to the fact that we love our freedom. Had Dalai Lama given up the demand for freedom of Tibet then he might have changed this prayer as well which he composed right after his coming to India.

His Holiness the Dalai Lama has often offered to the Chinese to hold a Referendum in Tibet under the supervision of any neutral agency like U.N.O. in which all the Tibetans residing anywhere outside Tibet should vote. If majority of Tibetans opt for living with China then Dalai Lama is ready to give up his claim over Tibet. Tibetans feel that they have the right to self determination. I think 99% of the Tibetans will opt for Dalai Lama and I am ready to make a concession of 1% for the misguided Tibetans.

We Tibetans seek support from the world community as we are the oppressed and harassed people. India being the biggest democracy of the world, an Asian giant, a nuclear power and the closest friend, philosopher and guide of Tibet has a special duty to perform in helping Tibet to regain its freedom. It is in this context that I seek help from India and a positive change in India's foreign policy.

Tibetans have great hopes from the present Government. I have met the Home Minister and Defence Minister of India and I have found them very sympathetic. During my visit to Switzerland, I came to know that the Indian Government has set up a committee to look into the foreign policy of India viz-a-viz China and Tibet. Tibetans have also given some suggestions to the committee.

In the end, let me tell you that the Tibetan card is the strongest card in Indian hands. If India plays it well then it can snatch initiative from the hands of China. China is very sensitive on Tibetan issue. If India gives an indication that it plans to give diplomatic recognition to the Tibetan Government in exile, then China will loose its peace of mind.

Gone are the days when a smile from Mao gladdened the hearts of Indian diplomats. Now a strong and resurgent India can talk to China on equal terms. The public opinion in India can change the opinion of Indian politicians as well.

རྒྱ་གར་གྱི་ཁྱིམ་མཚེས་ཡུལ་བོད་དང་། བལ་ཡུལ། བརྨ།
ལང་ཀའི་ས་མཚམས་སུ་སྲུང་སྐྱོབ་ཀྱི་སྡེ་ཆེན་པོ་མེད།
ཡིནའང་རྒྱ་ནག་དང་པ་ཀི་ས་ཏན་གྱི་ས་མཚམས་སུ་འགྲོ་སོང་
སྟོང་ཕྲག་མང་པོ་གཏོང་ནའང་ཡུལ་གྱི་ཞི་བདེ་དང་
སྲུང་སྐྱོབ་ལ་འཇིགས་པ་ཆེན་པོ་སླེབས་འདུག

ཏཱ་ལའི་བླ་མ་བསྟན་འཛིན་རྒྱ་མཚོ།

अगर भारत के पड़ोसी देश तिब्बत, नेपाल ब्रह्म देश, श्री लंका हैं तो सीमाओं पर पुलिस के दस-दस सिपाहियों से भी काम चल जायेगा। अगर चीन व पाकिस्तान भारत के पड़ोसी हैं तो हजारों की फौज व करोड़ों रू. का प्रतिदिन का व्यय होने पर भी सुरक्षा और शांति को खतरा है।

-पू. दलाई लामा

TIBBAT KI AZADI : BHARAT KI SURAKSHA – SOME REFLECTIONS

– Dr. Surinder Kumar Gupta

Tibet, known as 'To-bo' in Chinese and 'Bhot' in Sanskrit literature, is a lofty country and a pure land. It has been aptly described as the roof of the world, the land of snows and the source of great rivers.

Ethnologically, the Tibetans are regarded to be completely different from the Chinese. Their language is Tibeto-Burman, the alphabet deriving from Sanskrit with a script akin to Pali. It has virtually no similarity with Chinese and does not use any ideograms.

Culturally, Tibet is a land of fascination and mystery. Its ancient culture commands deep interest and respect. The earliest religion practised by the people here was Bon, a kind of Shamanism which was greatly influenced by Saivism followed in Kashmir. Later, it adopted with great fidelity, but not without its own dynamism, the highly developed Buddhism of India. That is why it is said that Buddhism of Tibet has its own distinctive character. It is often called Lamaism and as explained by the Dalai Lama in his book ***My Land and My People,*** it follows all the three paths of Hinayana, Mahayana and Tantrayana. China did influence Tibet in its food and dress habits and arts, yet Tibet continued to be essentially Tibetan.

Geographically, Tibet commands a very strategic position in Asia. To the north lies Mongolia; to the north-west Chinese Turkestan; to the east Chinese provinces of Sichuan and Kansu; to the south-east is Burma; to the south Assam, Bhutan, Sikkim and Nepal; and to the south-west is Kashmir, including Ladakh. What is still more significant to note is that Tibet is ringed on all sides by huge mountain ranges. These have protected Tibet almost entirely from invasion and from exploitation by foreign powers except China.

II

In the recent past, China's penetration into Tibet dates back to 1950 onwards. The initial policy of moderation in the first half of the 1950s was followed by its forcible occupation and ruthless de-Tibetanation and sinocization. The latter was achieved through racial, cultural, religious atrocities and discriminations, by introducing large scale programmes of education and indoctrination under Chinese communist teachers and officials, by securing a stranglehold on all Tibetan trade and commerce, by channelling all transactions through branches of the Bank of China and by slowly undermining the economic position and the authority of the monasteries. The private property of the high ranking Lamas, especially those living in Kham, eastern Tibet was confiscated. Not only this, Chinese resorted to forced labour which broke the back of these Tibetans. Further, a large number of Hans settled in both the river valleys and the uplands. Then they started directly interfering with the Dalai Lama's administration. All this gradually resulted into the destruction of all vestiges of Tibetan autonomy and its links with the past and its incorporation into China.

Dalai Lama escaped to India; the whole world watched Tibet being passed under the direct control of China. Nehru's policy of Panchsheel could hardly be any help to Tibet. It not only failed to check persecution, torture and genocide of the Tibetans and destruction of the monasteries but also invasion of India in 1962.

Notwithstanding the fact that since 1962, there has been a lot of rethinking on India's foreign policy towards China, it has even now failed to make Tibet its focal centre. Is it because of proper realization on our part about the importance of Tibet as a buffer between China and India and the countries lying in her neighbourhood? Is it because we have no deep understanding of the motives of China in the region lying in its south across Tibet? Or is it that in Indian foreign policy idealism and pragmatism have become so much meshed up that there often emerges a mismatch between the two?

I fully share the view that there is a typical co-relation between Tibetan independence and security of India. Extending support to Tibet would not only mean supporting one who is culturally, religiously and linguistically so akin to India and its populace but also strengthening our own security position and networks. It is a fact that air and nuclear warfare have reduced the relevance of the Himalayas as *Pehredar* of India and some of her neighbours, yet we should not be blind to that fact that everything is not decided by hi-tech. Conquests whenever accompanied by occupation, have to face different set of ground realities; these may be geographic, socio-economic, cultural or political in nature.

When India was attacked in 1962, the speculations which were ripe in the Western media were that China's target is not only Tibet but it was aiming at the "rice bowl" of south-east Asia, or at least the "five fingers" later described as Panchsheel or the five tridents. Tibet's occupation and weakening of Indian defence in the north-east were a means to an end. On one side, the end is that China being expansionist Burma, Thailand and the remnants of the old Indo-Chinese territory, has also intended to extend its frontiers towards Ladakh, Nepal, Bhutan, Sikkim and NEFA as per the theory of "five fingers" once widely prevalent in China. Even it intends to have access into the Bay of Bengal via Bangladesh. China's intentions in Ladakh had been quite clear for a long time but her two-pronged invasion in the Dhola-Khinzemane-Towang region between Bhutan and NEFA on the triangle of India-Bhutan-China border on the one side and in Walong on the triangle of the India-Burma-China border on the other, and her successive refusals in more recent years to accept India's claims to talk to her on behalf of Bhutan and Sikkim, added to her strengthening of ties, diplomatic as well as economic, with Nepal, and gave significant indication of what the Chinese intentions could be. Used to devious and tortuous ways it was for China to decide how much she would like to take in her first bite. The encouragement and military help China has always extended to Pakistan, which besides leading inter-state border terrorism has foisted two wars on India, is another factor to reckon with. All this indicates that it is not simply a case of establishing hegemony or supremacy in Asia.

Obviously under the given circumstances, it is high time not only for India but for all countries spread the world over including the UNO to have a fresh look at Tibet

and its status *vis-a-vis* China. Tibetan's never recognized any affinity with the Chinese. Nor did they during their long saga of struggle accepted attempts at assimilation or sinocization. Hundreds and thousands of Tibetans have migrated to other lands, suffered persecution, privations, harassment and tortures of varied kinds, and even genocide of their brethren. Who should take the lead to check all this is the crux of the question. There is, no doubt, that it is the responsibility of all the countries and organizations like the UNO but the Buddhist world and India too should not shirk their duty. India knows more about Tibet than any other country does, and has more affinities – religious, cultural and linguistic – with that country than any other country has. Even politically she has more vital interest in Tibet than any other country. From the point of view of her own security Tibet's independent status is indispensable. For the security of India as well as for safeguarding the free institutions in the rest of Asia from China, the latter's containment on the northern slopes of the Himalayas is absolutely essential; but this cannot be done by protecting the foothills in India or even the southern slopes. The relative geographical position of the two countries is such that any army in position in Tibet has immense superiority and tactical advantage over an army struggling in the rain-soaked, deeply cut and continually ascending terrain south of the Himalayan range.

Thus, to sum up, it may be said that what is required is a new posture, a new line of thinking and a long-range policy regarding India's relations with China and Tibet and that policy should have Tibetan independence as its core. World consciousness must be roused to force China to withdraw from Tibet. Tibetan population does not threaten anybody; rather it has much to contribute to world's philosophy – Buddha's peace and amity. As such, Tibetan voice should not be muted for ever, nor should they be snuffed out of existence by the Chinese. India has nothing to lose by making a definite change in her foreign policy so far as Tibet is concerned. Instead, she would gain by adopting a policy which will be morally and internally the right one and is in conformity with India's traditional opposition to colonialism and her policy of fighting for suppressed people's rights throughout the world. This would not only redeem India's honour and prestige but if carried to a successful conclusion, India's security of the northern frontiers, if not automatically guaranteed permanently, it would stand significantly beefed up.

परिशिष्ट-1

भारतीय संसद का प्रस्ताव

14 नवंबर, 1962

"इस संसद को इस बात का गहरा दुख है कि चीन की जनवादी सरकार ने भारत के सदाशयतापूर्ण मैत्री व्यवहारों की उपेक्षा करके दोनों देशों के बीच परस्पर स्वाधीनता, तटस्थता और एक दूसरे के मामलों में हस्तक्षेप न करने के सिद्धांत एवं सहअस्तित्व की भावना के समझौते को न मानकर पंचशील के सिद्धांतों का उल्लंघन किया है। इसके बाद चीन ने अपनी विशाल सेना लेकर पूरी तैयारी के साथ भारत पर आक्रमण किया है।

यह संसद हमारी सेनाओं के जवानों और अधिकारियों के शौर्यपूर्ण मुकाबले की सराहना करती है, जिन्होंने हमारी सीमाओं की रक्षा की है। सीमा सुरक्षा में अपने प्राणों की बलि देने वाले वीरगति प्राप्त शहीदों को हम श्रद्धांजलि देते हैं और मातृभूमि की रक्षा के लिए दी गई कुर्बानी के लिए नतमस्तक होते हैं। यह संसद भारतीय जनता के सक्रिय सहयोग की प्रशंसा करती है, जिसने भारत पर चीनी आक्रमण से उत्पन्न संकट तथा आपात स्थिति में भी बड़े धैर्य से काम लिया। संसद हर वर्ग के लोगों के उत्साह और सहयोग की प्रशंसा करती है जिन्होंने आपातकालीन स्थितियों का डट कर मुकाबला किया। भारत की स्वाधीनता की रक्षा के लिए लोगों में एक बार फिर स्वतंत्रता, एकता और त्याग की ज्वाला फूटी है।

विदेशी आक्रमण के प्रतिरोध में हमारे संघर्ष के क्षणों में जिन अनेक मित्र राष्ट्रों की सहायता हमें प्राप्त हुई है, उनकी इन नैतिक एवं सहानुभूतिपूर्ण संवेदनाओं के प्रति यह संसद अपनी कृतज्ञता ज्ञापित करती है।

संसद आशा और विश्वास के साथ प्रतिज्ञा करती है कि भारत की पवित्र भूमि से हम आक्रमणकारियों को खदेड़कर ही दम लेंगे। इस कार्य में हमें चाहे कितना ही समय क्यों न लगाना पड़े या इसका कितना भी मूल्य चुकाना पड़े, हम चुकाने को तैयार हैं।"

परिशिष्ट-2

भारत-तिब्बत सहयोग मंच की ओर से पारित प्रस्ताव

17 अक्तूबर, 2000

(यह प्रस्ताव मंच द्वारा आयोजित धर्मशाला, शिमला लेह और चंडीगढ़ की गोष्ठियों में पारित किया गया)

हम भारत-तिब्बत के लोग भारत सरकार से अपील करते हैं कि वह तिब्बत के प्रश्न को पूरी निष्ठा से अन्तर्राष्ट्रीय मंचों पर उठाये और उसके सार्थक समाधान के लिए पग उठाये।

भारत सरकार एवं चीन में यदि भविष्य में तिब्बत को लेकर कोई वार्ता होती है तो उसमें तिब्बत को भी एक पक्ष के रूप में शामिल किया जाना चाहिए।

साथ ही मंच समस्त अन्तर्राष्ट्रीय समुदायों से अपील करता है कि तिब्बत की आज़ादी के लिए एवं तिब्बत में मानवाधिकारों के हनन को रोकने के लिए चीन पर दबाव बनाया जाये।

लेखक परिचय

आयार्च येशी फुंछोकः सम्पूर्णानंद संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी के बौद्ध दर्शन में स्नातकोत्तर आयार्च। तिब्बती राष्ट्रीय लोकतांत्रिक दल के अध्यक्ष। भारत-तिब्बत सहयोग मंच के राष्ट्रीय सहसंयोजक। तिब्बती स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रसार हेतु अनेक देशों की यात्राएं की। सम्पर्क सूत्रः मैकलोडगंज, धर्मशाला (हि.प्र.)

इन्द्रेश कुमारः पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ से आभियांत्रिकी में स्नातक। राष्ट्रीय स्वयं सेवक संघ के क्षेत्रीय प्रचार-प्रसार प्रमुख। हिमालय समस्याओं विशेषकर जम्मू-कश्मीर के विषय के विशेषज्ञ। भारत-तिब्बत सहयोग मंच के संस्थापक संरक्षक। सम्पर्क सूत्रः वीर भवन, रघुनाथपुरा, जम्मू।

डा. चमन लाल गुप्ताः हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष। प्रसिद्ध समालोचक और प्रतिष्ठित साहित्यकार। यशपाल और धूमिल के साहित्य के विशेषज्ञ। हिमाचल प्रदेश स्कूल शिक्षा बोर्ड धर्मशाला के अध्यक्ष। भारत तिब्बत सहयोग मंच के राष्ट्रीय संयोजक। सम्पर्क सूत्रः हिमाचल प्रदेश स्कूल शिक्षा परिसर, धर्मशाला (हि.प्र.)।

डा. कुलदीप चन्द अग्निहोत्रीः हिमाचल रिसर्च इन्स्टीच्यूट चकमोह-हमीरपुर (हि.प्र.) के निदेशक। अनेक देशों का भ्रमण। हिन्दी के जाने-माने हस्ताक्षर। सामाजिक कार्यों से जुड़े हुए। आपात स्थिति में जेल यात्रा। अनेक साहित्यक व सामाजिक पुस्तकों के लेखक। भारत-तिब्बत सहयोग मंच के राष्ट्रीय सह संयोजक। सम्पर्क सूत्रः प्राचार्य बाबा बालक नाथ महाविद्यालय, चकमोह (हमीरपुर) हि.प्र.।

ईश्वर दास धीमानः शिक्षा विद, सामाजिक कार्यों में रूचि लेने वाले। लम्बे अरसे तक अध्यापन कार्य से जुड़े रहे। तीन बार हिमाचल प्रदेश विधान सभा के लिए चुने गए। हिमाचल प्रदेश सरकार में शिक्षामंत्री। सम्पर्क सूत्रः हिमाचल प्रदेश सचिवालय, शिमला।

चौधरी स्वर्ण रामः सामाजिक आन्दोलनों से जुड़े हुए। आपात स्थिति में तानाशाही के खिलाफ जेल यात्रा। पंजाब विधान सभा के सदस्य। पंजाब सरकार में पर्यटन और संस्कृति मंत्री। सम्पर्क सूत्रः पंजाब सरकार सचिवालय, चण्डीगढ़।

डा. कारे नारायण पाठकः प्रसिद्ध भौतिक विज्ञानी। पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़ में भौतिक विज्ञान विभाग के अध्यक्ष। अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति की शोध पत्रिकाओं

में अनेकों शोध पत्र प्रकाशित। पंजाब विश्वविद्यालय चण्डीगढ़ के कुलपति। सम्पर्क सूत्रः पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

कर्मा छोफेलः तिब्बत के कैलाश मानसरोवर क्षेत्र से सम्बन्ध रखने वाले कर्मा छोफेल निर्वासित तिब्बती समुदाय में अंग्रेजी भाषा के योग्य प्राध्यापक के नाते प्रसिद्ध। निर्वासित तिब्बती संसद के सदस्य। सम्पर्क सूत्रः मैकलोडगंज, धर्मशाला (हि.प्र.)।

डा. सुरेन्द्र कुमार गुप्ताः हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के इतिहास विभाग के अध्यक्ष। जाने-माने इतिहासकार। हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय के कुलपति। सम्पर्क सूत्रः हिमाचल प्रदेश विश्वविद्यालय, शिमला।

आप बीती-जगबीती

तिब्बत में चीनी अत्याचारों एवं उसकी उपनिवेशवादी नीति के खिलाफ तिब्बतियों ने मार्च 1959 में विद्रोह कर दिया तो तिब्बत की आध्यात्मिक एवं राजनैतिक सत्ता के मुखिया चौदहवें दलाई लामा तेनजिन ग्याछो को अपनी सरकार समेत भारत आना पड़ा। 17 मार्च को दलाई लामा भारत की ओर चले। 27 अप्रैल 1959 को भारतीय जनसंघ के महासचिव पंडित दीन दयाल उपाध्याय ने राष्ट्र को सचेत किया, ''तिब्बत की स्यायत्तता हमारे लिये बहुत महत्वपूर्ण है। अगर हम यह नहीं दिला सके तो न केवल हमारी अखंडता और स्वतंत्रता खतरे में पड़ जायेगी, बल्कि हमारे लिये गुटनिरपेक्षता की नीति जारी रखना भी असम्भव हो जायेगा।'' इससे ठीक एक महीना पहले 27 मार्च 1959 की पटना में जय प्रकाश नारायण पहले ही तिब्बत की ऐतिहासिक स्थिति स्पष्ट कर चुके थे। ''तिब्बत कभी भी चीन का हिस्सा नहीं रहा। चीन ने किसी समय उस पर बलपूर्वक कब्जा करके उसे नज़राना देने पर विवश किया था। लेकिन एक ऐसा समय भी आया था जब चीन तिब्बत को नज़राना देने पर विवश हुआ था। तिब्बती चीनी नहीं है और इतिहद्मस में इस बात का प्रमासा भी नहीं है कि उन्होंने कभी चीन का हिस्सा बनने की इच्छा जाहिर की हो।''

8 जुलाई 1959 की भारतीय जनसंघ ने सर्व सम्मति से पारित किया ''भारतीय जनसंघ की दृष्टि में भारत का यह नैतिक कर्तव्य है कि वह ऐसे कदम उठाये जिससे तिब्बत पर चीन का आक्रमण समाप्त हो, तिब्बत से चीनी सेना वापिस जाये और तिब्बत की आज़ादी बहाल हो। भारत की अपनी सुरक्षा के लिहाज़ से भी यह जरुरी है कि तिब्बत से चीनी सेना हटे और तिब्बत आज़ाद हो।''

सरदार पटेल का दर्द तिब्बत के मामले में और प्रकार का था। पटेल उदास थे। ''तिब्बत की सबसे बड़ी त्रासदी तो यह है कि उन्होंने हम पर विश्वास किया। भारत पर विश्वास किया। उन्होंने स्वेच्छा से हमारा मार्गदर्शन स्वीकारा। लेकिन हम उन्हें चीनी कूटनीति या चीनी दैत्य के शिकंजे से बाहर नहीं निकाल सके।'' लेकिन ये सारी चर्चाएं बीसवीं शताब्दी के छटे दशक के अंतिम दिनों की है। उसके बाद से चार दशक व्यतीत हो गये। तिब्बत को गुलाम हुये तो आधी शताब्दी ही बीत गई। दलाई लामा अपने हठ और धैर्य से तिब्बत के प्रश्न को अन्तर्राष्ट्रीय मंचों तक ले गये। ल्हासा और गंगा में न जाने कितना पानी बह गया। लेकिन तिब्बत को लेकर भारत अपनी छटे दशक वाली ऊहापोह से बाहर नहीं निकल सके। तिब्बत को लेकर दिल्ली के गलियारों में धुंध ही छायी रही।

इसी धुंध से मुक्ति के लिये बीसवीं शताब्दी के अवसान की बेला में 5 मई 1999 को भारत–तिब्बत सहयोग मंच का गठन हुआ। धुंध से मुक्ति का यह प्रयास इन्द्रेश कुमार का था। उन्होंने ही 7 अक्तूबर से 20 अक्तूबर तक प्रत्येक वर्ष सम्पूर्ण देश में 'तिब्बत–मुक्ति पखवाड़ा' मनाने का आहवान किया। यह पुस्तिका सम्वत् 2057 के 'तिब्बत मुक्ति पखवाड़ा' के गोष्ठी कार्यक्रमों का ही संकलित रुप है। तिब्बत संसदीय एवं नीति शोध नई दिल्ली स्थित केन्द्र के सहयोग से ही इसे पुस्तक का मुद्रित कलेवर दिया जा सका। तिब्बत ब्यूरो नई दिल्ली के श्री जाम्यांग दोर्जी ने पुस्तक के प्रकाशन में भागदौड़ की। लेकिन पुस्तक के आकार ग्रहसा करने के अन्तिम दिनों उन्हें सिक्किम जाना पड़ा तो यह सारा उत्तरदायित्व तिब्बती संसदीय एवं नीति शोध केन्द्र की कार्यकारी निदेशक श्रीमती छीरिंग छोमो के कन्धों पर आया। उन्हीं के सतत एवं सद् प्रयासों से यह दस्तावेज वर्तमान स्वरूप में प्रस्तुत हो सका है। इति ग्रन्थ गाथा।

चकमोह–हमीरपुर — डा. कुलदीप चन्द अग्निहोत्री

28 अप्रैल 2001

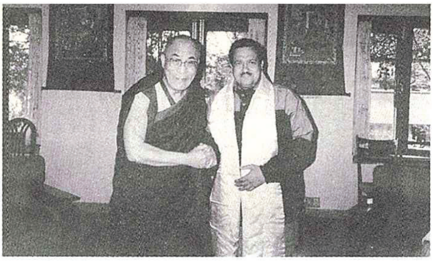

भारत-तिब्बत सहयोग मंच के संस्थापक संरक्षक इन्द्रेश कुमार, परम पावन दलाई लामा जी के साथ

20 अक्तूबर 1999 को तिब्बत मुक्ति पखवाड़ा वे अन्तर्गत चीनी दूतावास के आगे प्रदर्शन करते भारत- तिब्बत सहयोग मंच के कार्यकर्त्ता !

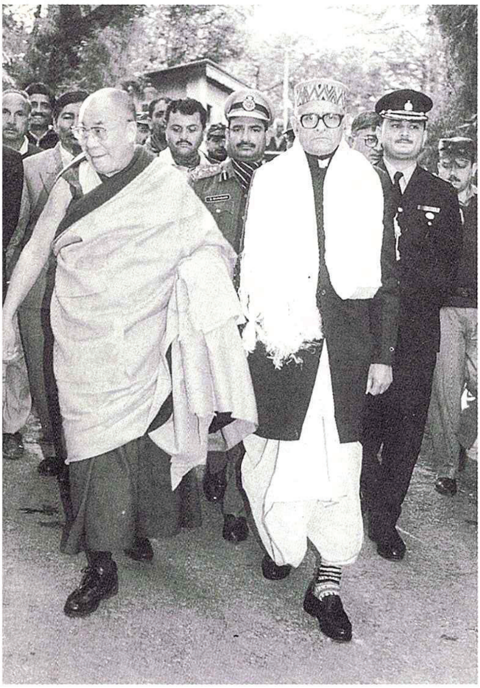

30 अप्रैल 2000 को धर्मशाला में भारत-तिब्बत सहयोग मंच की ओर से परम पावन दलाई लामा जी का सार्वजनिक अभिनन्दन किया गया। कार्यक्रम में भाग लेने के लिये आ रहे दलाई लामा एवं हिमाचल के राज्यपाल प्रो. विष्णु कान्त शास्त्री !

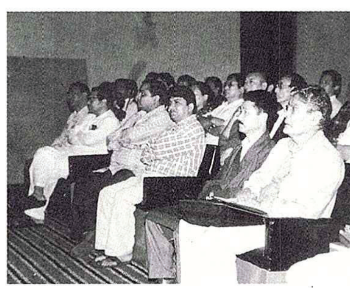

भारत-तिब्बत सहयोग मंच की एक गोष्ठी में प्रबुद्
श्रोताग

भारत-तिब्बत सहयोग मंच की एक सामान्य बैठक

ndian help to
ibetans not
ood enough'

rom Our Correspondent
CHANDIGARH

13 — "The freedom of Tib
y important for India. Wit
eps, the security of India wil
e more strong," said Mr
Chand Agnihotri, co-ordi-
f the Indo-Tibet Sehyog
at a conference held at
Bhawan of Panjab
y here today.
ihotri spoke a
f China
the
vas not help-
in the right way.
chain in Sino-Indian
as Buddhism,
displac
ou
tion

gues
njab,
phasise
e -Ch
y, Mr
confere
of Indo
Mr Indresh
similar views
r of the Tibetan
arma Chop
olicies of Chi
misfortune

he conference,
ed the Indian
the Tibeta
untry." We
n brothers to
rights. The
from our
nternation-

तिब्बती संस्कृति नष्ट कर

भास्कर समाचार सेवा

चंडीगढ़, 14 नवंबर। भारत-तिब्बत सहयोग मंच के संरक्षक इंदरेश कुमार का कहना है कि तिब्बत की आजादी का मसला संयुक्त राष्ट्र संघ के समक्ष उठाया जाना चाहिए। उनका कहना है कि भारतीय प्रतिनिधियों की चीन के साथ होने वाली हर वार्ता में भी तिब्बत को शामिल किया जाना चाहिए। पंजाब यूनिवर्सिटी के गांधी भवन में मंच की तरफ से मनाए जा रहे तिब्बत मुक्ति पखवाड़ा के अंतर्गत, 'तिब्बत की आजादी, भारत की सुरक्षा' विषय पर आयोजित गोष्ठी में इंदरेश कुमार ने कहा कि चीन द्वारा तिब्बत में वहां की संस्कृति को नष्ट किया जा रहा है। तिब्बत में ह्यन जाति के लोगों को बसाकर चीन तिब्बतियों को अल्पसंख्यक बना रहा है।

ने कहा कि तिब्बत
का ही साथ देगा।
के लिए हो रहा सं
होकर भारतीयों अ
है। उन्होंने कहा कि
को आगे आना चा
भारत-तिब्बत
कुलदीप चंद अग्नि
और चीन के युद्ध
का कुछ हिस्सा अ
के डर से तिब्बत
की आलोचना करते
उनके मुताबिक
के बराबर है। भा

तिब्बत की तबाही के लिए चीन ज़िम्मेदार

समारोह की अध्यक्षता विश्वविद्यालय के कुलपति प्रो. के.एन. पाठक ने की। उन्होंने आश्वासन दिया कि विश्वविद्यालय परिसर में

तिब्बत सहयोग मंच के संरक्षक इं
ने भी अपने विचार प्रस्तुत किये।
तिब्बत पार्लियामेंट के सांसद
ने तिब्बत की तबाही के लि
जिम्मेदार ठहराया। उन्होंने आरो
चीन, तिब्बत की सांस्कृतिक
समाप्त करने पर तुला हुआ
प्रभारी सूरत नेगी ने मुख्य
वक्ताओं का आभार व्यक्त
इस अवसर पर पारित एव
सरकार तथा अंतर्राष्ट्रीय सं
किया कि वे तिब्बत की
प्रयास करें। यह भी पारि
तिब्बती जनता को अपने भ
का मानवीय अधिकार

पंजाब विवि में सेमिनार

चंडीगढ़। तिब्बत की सुरक्षा भारत की
सुरक्षा से जुड़ी है। जब तक तिब्बत
सुरक्षित है तब तक भारत सुरक्षित है
में
के
भा
चर
पंज
सभागार में 'तिब्बत मुक्ति संघर्ष' विषय

1999-REFERENDUM IN EAST TIMORE

2000 REFERENDUM IN TIBET ?

Your Support can make it happen !

BHARAT - TIBET SAHAYOG MANCH

Swaran Sin
extends sup
to Tibetans

The Times of India Ne

CHANDIGARH: A
liberation of Tibet an
to the security of Ind
ised by the Indo-T
Manch at Panjab U
on Monday.
Speaking at the
Chancellor KN Path
portance of sol